2008-0293

130.

Bill No. 3/07-08

धन्वन्तरि परिचर्या – in Hindi with quotations in Sanskrit – By रघुवीरशरण शर्मा वैद्य.

बुलन्दशहर, 1950.

1341

8

...धि परिचय



...शर्मा वैद्य

॥ धन्वन्तरि-परिचय ॥

लेखक—

रघुवीरशरण शर्मा वैद्य, रचयिता—

भारतीय जीवाणु विज्ञान आदि

सदस्य ज़िला बोर्ड

रसायन शाला, बुलन्दशहर

सम्वत् २००७ विक्रम

प्रथम संस्करण १००० | सन १९५० | मूल्य ॥)

प्रकाशक—
रघुवीर शरण शर्मा वैद्य,
रसायनशाला,
बुलन्दशहर

मुद्रक—
बा० रामसरन सिंघल
मु० हरप्रसाद प्रेस
बुलन्दशहर

॥ प्राक्कथन ॥

ईश्वर को कोटिशः धन्यवाद है, जिस की कृपा से आज यह "धन्वन्तरि परिचय" नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई। धन्वन्तरि के परिचय पर यह सब से पहिली पुस्तक है। धन्वन्तरि के नाम को भारत का प्रत्येक व्यक्ति जानता है, धन्वन्तरि को अवतार मानता है, धन्वन्तरि के जन्म दिन कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी (धन तेरस) को उन की स्मृति में नवीन पात्र (वर्तन) भी खरीदता है किन्तु उस के जीवन से अपरिचित है। भारत के वैद्य धन्वन्तरि के उपदेश जो कि सुश्रुत संहिता नाम से प्रसिद्ध है उस से चिकित्सा कर के जीविका करते हैं। धन्वन्तरि की स्मृति में उन के जन्म दिन (कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी) पर उत्सव मनाते हैं पत्र व्यवहार में 'धन्वन्तरये नमः' लिखते हैं। फार्मेसी तथा औषधालयों के नाम धन्वन्तरि रखते हैं। तथापि धन्वन्तरि संवन्धी ज्ञान उन को नहीं। अधिक से अधिक धन्वन्तरि की उत्पत्ति समुद्र से है, सुश्रुत के गुरू थे मात्र जानकारी है। यह कम दुख की बात नहीं। यह बात मुझे निरन्तर व्यग्र करती रहती थी। इस व्यग्रता को दूर करने के लिये मैंने "धन्वन्वन्तरि और दिवोदास" शीर्षक लेख धन्वन्तरि भाग १७ अंक ६ [१६४२ ई०] में प्रकाशित कराया और "धन्वन्तरि" शीर्षक से अक्तूबर १६४५ ई० में मेरा लेख पुनः "धन्वन्तरि" में ही प्रकाशित हुआ। किन्तु मुझे इतने से

सन्तोष नहीं हुआ इस बीच में कुछ मित्रों के पत्र आये और कुछों ने मौखिक आदेश दिये कि एक पुस्तक लिखूं जिस में न केवल धन्वन्तरि का अपितु आत्रेय पुनर्वसु आदि आयुर्वेद वैज्ञानिक ऋषियों तथा नग्नजित् दारुवाह, निमि वैदेह, कराल वैदेह, आदि आचार्यों का भी परिचय हो ।

मैंने मित्रों की आज्ञा शिरोधार्य कर पुस्तक लिखने का निश्चय किया । और साथ ही वतमान समय में इतिहास संवन्धी जो कठिनाइयां हैं उन पर भी विचार किया । वर्तमान समय में भारतीय इतिहास बहुत ही विकृत होगया है । विदेशियों ने न केवल हमारे देश तथा शरीर पर अधिकार किया अपितु उन्हों ने हमारे मस्तिष्क पर भी अधिकार करलिया है । अतः हमारी चिंतन शैली विदेशी बनगई है । हमारे विचार आज विदेशिथों के विचार हैं । भारतीय साहित्य में मैक्समूलर, वेबर मेकडानल, ग्रीफिथ ह्विटनी, पार्जीटर, और विन्सेन्ट स्मिथ आदि विदेशी विद्वानों ने अनेक भ्रमात्मक विचारों का प्रचार किया है । वेदों का निर्माण ईसा से २४०० वर्ष पूर्व हुआ है । वेदों में जर्फरी तुर्भरी आदि शब्द मिलते हैं अतः इनका निर्माण भारत में नहीं हुआ महाभारत का युद्ध काल्पनिक है । आर्यों का मूलस्थान भारत नहीं ईरान है । आदि आदि । उपरोक्त विचारों का प्रभाव भारतीय शिक्षित वर्ग तथा नेताओं पर भी पड़ा । दौर्भाग्य से पूज्य मोहनदास कर्मचन्द गांधी जी भी भारतीय युद्ध को काल्पनिक मानते थे । श्रद्धेय श्री जवाहरलाल जी नेहरू आर्यों का

मूल-स्थान भारत को नहीं मानते । श्रद्धेय ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में हरिवर्ष देश को योरप, पाताल† को अमरीका, पांडव अर्जुन की स्त्री कौरव्य नाग की पुत्री 'उलूपी'§ जो कि हरद्वार की रहनेवाली थी उसको अमरीका की राजकुमारी लिखा है। पाण्डु की स्त्री "माद्री"❀ को ईरान देश की राजकुमारी लिखा है। इसी प्रकार श्री दामोदर सातवलेकर जी ने दशरथ पत्नी "कैकेयी"‡ को ईरान की राजकुमारी लिखा है। इस में मेरा नम्र निवेदन है कि उपरोक्त विचार या कथन सभी निराधार एवं सारहीन हैं, इन में सार है तो केवल इतना ही कि महापुरुषों के कथन पर जन साधारण विश्वास करते हैं। अतिरिक्त इन के पुराण, इतिहास जिन में हमारे पूर्वजों के इतिहास की निधि सुरक्षित है, उनमें भी अनेक स्थलों पर अशुद्धियां परस्पर विरोध तथा पाठ-भ्रष्ट आदि दोष हैं। अतः निष्कर्ष पर पहुंचना और विषय की संगति मिलाना असंभव नहीं तो कठिन

---

† लेखक ने 'पाताल लोक' नाम की पुस्तक लिखी है पर अभी वह प्रकाशित नहीं हुई।

§ देखो भारतीय जीवाणु विज्ञान पृ० ६७

❀ देखो लेखक का "पाण्डु पत्नी माद्री क्या ईरानी थी" शीर्षक लेख ['विश्व वाणी' प्रयाग जौलाय १९४९ ई०]

‡ देखो लेखक का लेख 'क्या दशरथ पत्नी केकयी ईरानी थी' ? शीर्षक लेख [विश्व वाणी प्रयाग सितंबर १९४९ ई०]

अवश्य है। अस्तु उक्त सब कठिनाइयों के रहते हुये भी सत्यानवेषी तथा स्वतंत्र विचारक होने के कारण मैंने पुस्तक लिखने में आत्म-विश्वास तथा साहस को नहीं छोड़ा। पुस्तक लिखी और आज वह ईश्वर की दया से प्रकाशित भी होगई है। पुस्तक में सभी धन्वन्तरि, सभी दिवोदास, उन सब का समय ऋषि कश्यप, ऋषि पुनर्वसु आत्रेय निमि वैदेह कराल वैदेह राजर्षि वार्योविद राजर्षि काशीपति वामक राजर्षि नग्नजित् आदि सभी पर प्रकाश डाला है। तथा उक्त महानुभावों के काल का भी निर्णय किया है। इसके अतिरिक्त प्रसंग वश आने वाले पर्वत मेरु पर्वत मन्दर गरुड़ काक तथा नाग आदि जातियों तथा नग्नजित् का पूर्ण परिचय परिशिष्ट में देदिया गया है। पुस्तक की उपयोगिता के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना, इसका निर्णय तो विद्वत्समाज ही करेगा। मुझे तो सहृदय पाठकों से केवल इतना कहना है कि त्रुटियों को न देख कर गुण को ग्रहण करें।

निवेदक—

रघुवीर शरण शर्मा, वैद्य

आश्विन २) द्वितीया,
संवत् २००७ वि०

भूमिका

"धन्वन्तरि परिचय" के लेखक श्री रघुवीरशरण शर्मा से मेरा कोई पहिला परिचय नहीं है।

पाश्चात्य कूटनीतिज्ञों द्वारा भारतवर्ष की पवित्र भूमि का विभाजन होने के अनन्तर, यवनराज्य की मान, जीवन, धन सम्पत्ति धर्म्म और आचार सभी को नष्ट कर देने वाली नारकीय पाशव परतन्त्रता से भागकर, अनेक समस्याओं और विपत्तियों से घिरीहुई निर्बल और व्यस्त भारत सरकार की ओर व्यर्थ आशा न बांध कर जिन लोगों को अपनी जीवन यात्रा पुनः आरम्भ से ही आरम्भ करनी पड़ी हो उनके लिये ग्रन्थशोध और साहित्य निर्माण आदि कलाओं का अभ्यास करना सुगम नहीं है। इसी लिये मैं नवीन सीमान्त के इस ओर के सभी मित्रों, विशेष तया सम्पादकों के बार बार आग्रह करने पर भी गत तीन वर्षों में कोई लेख या सम्मति आदि लिखकर उनकी आज्ञा का पालन करने में असमर्थ रहा हूं। इस काल में मुझे न तो पढ़ने के लिये ही विशेष अवकाश मिला न कुछ लिख सकने के लिए ही। जब कुछ मिला भी तो मन में पूर्ण उत्साह न पाया।

इस अवस्था में भी मैंने एक अपरिचित व्यक्ति की लगभग सवा दोसौ पृष्ठ की पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा और फिर उसपर

यह दो शब्द लिखने को उद्यत हुआ, पाठक इसी से समझ लेंगे कि इस पुस्तक के लेखक की विद्वत्ता का मेरे मन पर कितना प्रभाव हुआ ।

"धन्वन्तरि परिचय" हिन्दी भाषा में अपने ढंग की पहिली पुस्तक है। बहुत गंभीर अध्ययन है लेखक का। पाण्डित्य, प्रतिभा और परिश्रम इन तीनों गुणों का निपात एकत्र मिलना कठिन है। "धन्वन्तरि परिचय" के प्रत्येक पृष्ठ पर इन तीनों की छाप है।

पुस्तक में वेद पुराण, उपनिषद्, इतिहास, साहित्य सब से ही पूर्ण सहायता ली गई है। जहांतक ग्रन्थनायक धन्वन्तरि का विषय है यह पुस्तक इन सबका ही निचोड़ है।

वैसे तो सम्पूर्ण ग्रन्थ ही ज्ञानप्रद और मनोरंजक है। परन्तु निम्नलिखित स्थलों पर ऐतिहासिक गुत्थियां सुलझाने का जो गवेषणा पूर्ण प्रयत्न श्री रघुवीरशरण जी ने किया हैं वह विशेष सराहनीय है:—

दिवोदास धन्वन्तरि से चौथी पीढ़ी पूर्व होनेवाले धन्वन्तरि को हरिवंश पुराण में "द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रिः स काशिराट्" लिख कर इनका काल द्वापर का द्वितीय भाग कहा है जबकि दिवोदास का काल २४ वां त्रेतायुग है। [पृ० ४०]

दिवोदास धन्वन्तरि का काल निर्णय के सम्बन्ध में प्रसंग वश आनेवाले विश्वामित्र, जमदग्नि, परशुराम तथा रावण जो कि विभिन्न कालों में अनेक हुये हैं उनके काल का भी निर्णय

किया है। इस से यह भ्रान्ति दूर होगी कि विश्वामित्र, परशुराम आदि एक ही व्यक्ति थे और वे कई युगों तक जीवित रहे [पृ० १०६]

श्री भगवद्दत ने "भारतवर्ष का इतिहास" नामक पुस्तक में श्री कृष्ण की स्त्री को गान्धार नग्नजित् की पुत्री लिखा है जोकि वस्तुतः कौसल नग्नजित् की पुत्री थी। [पृ० १९३]

निमि विदेह कराल वैदेह का काल निर्णय "अलबेरूनी का भारत" आदि प्रमाणों से सिद्ध किया है। चरक संहिता, काश्यप संहिता आदि का निर्माण द्वापर युग में भारत युद्ध से ७५ वर्ष पूर्व और आज से पांच हजार से अधिक वर्ष पूर्व हो चुका है [१४३ पृष्ठ]

हमारे पुराण इतिहास ग्रन्थों में दशरथ को इन्द्र का मित्र कहीं नहीं लिखा परन्तु बुद्धचरित में लिखा है। लेखक ने इसको उद्धृत किया है। [पृ० १८०]।

इस प्रकार अनेक स्थल ऐसे हैं जो न केवल हमारे धन्वन्तरि परिचय सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि करते हैं परन्तु उन के पढ़ने से अध्यापकों और विद्यार्थियों को ग्रन्थ पाठों में किस प्रकार खोज करनी चाहिये यह मार्ग भी मिलता है।

जन साधारण को इस सरल शैली से कठिन शास्त्रावगाहन का वह आनन्द मिलेगा जो ऐतिहासिक उपन्यास पढ़ कर प्राप्त होता है। लेखक ने परिश्रम का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर लिया है— पाठकों के लिए केवल आनन्द और ज्ञान प्राप्ति ही रक्खे हैं।

मेरी इच्छा है कि अधिकाधिक व्यक्ति इस ग्रन्थ को पढ़ें। वैद्य, अध्यापक, विद्यार्थी और जन साधारण।

आयुर्वेद के इतिहास सम्बन्धी पाठ्यक्रम में भी इस पुस्तक को विशेष स्थान मिलना चाहिये।

शिव शर्म्मा
विद्या वागीश, वैद्यरत्न, आयुर्वेद शिरोमणि,
आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद बृहस्पति,
(D. Sc. in Ayurvead)
भूतपूर्व अध्यक्ष—
निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल,
भू०पू० डाइरेक्टर प्रिंसिपल—
मूलचन्द खैराती ट्रस्ट आयुर्वेदिक एन्ड
सर्जिकल हास्पिटल, लाहौर।

बहारस्तान
कंबाला हिल
बंबई
२०-१२-१९५०

विषय सूची

विषय पृष्ठांक

समाप्त

सहायक ग्रन्थ

१ ऋग्वेद
२ यजुर्वेद
३ अथर्व वेद
४ शतपथ ब्राह्मण
५ ऐतरेय ब्राह्मण
६ जैमिनीय ब्राह्मण
७ श्वेताश्वर उपनिषद्
८ छान्दोग्य उपनिषद्
९ वृहदारण्यक उपनिषद्
१० स्कन्द पुराण
११ गरुड़ ,,
१२ वामन ,,
१३ वाराह ,,
१४ आग्नेय ,,
१५ ब्रह्म ,,
१६ ब्रह्माण्ड ,,
१७ ब्रह्मवैवर्त ,,
१८ विष्णु ,,
१९ मत्स्य ,,
२० वायु ,,
२१ नीलमत ,,
२२ हरिवंश
२३ महाभारत
२४ श्रीमद्भागवत
२५ श्रीमद्भगवद् गीता
२६ वाल्मीकि रामायण
२७ काठकसंहिता [यजुर्वेद]
२८ सुश्रुत संहिता
२९ चरक संहिता
३० आयुर्वेद दीपिका टीका चरक संहिता
३१ काश्यप संहिता
३२ हारीत संहिता
३३ भेड़ संहिता
३४ सुषेण संहिता
३५ अष्टांग संग्रह
३६ अष्टांग हृदय
३७ सर्वांगसुन्दरि टीका अष्टांग हृदय
३८ चिकित्सारत्न भूषण
३९ भाव प्रकाश
४० माधव निदान

४१ उपोद्घात काश्यपसंहिता
४२ वाराहीसंहिता [ज्योतिष]
४३ धनुर्वेद संहिता
४४ सुश्रुत संहिता टीका वल्हण
४५ भोज प्रबन्ध
४६ रघुवंश
४७ कौटिलीय अर्थ शास्त्र
४८ कामसूत्र
४९ अष्टाध्यायी
५० काशिका वृत्ति
५१ राज तरंगिणी
५२ शुक्रनीति
५३ अमरकोश
५४ हिन्दी शब्द-सागर
५५ पृथिवी प्रदक्षिणा
५६ विश्व इतिहास की झलक
५७ अलबेरूनी का भारत
५८ भारतीय इतिहास की रूपरेखा
५९ सुंगयुन
६० सुयेनच्वांग या हुयेनसंग
६१ अन्धकारयुगीन भारत
६२ वैदिक वाङ्मय का इतिहास
६३ भारतवर्ष का इतिहास
६४ कैलास मानसरोवर
६५ बद्रीनाथ केदारनाथ यात्रा
६६ कृष्ण धर्म जातक [बौद्ध]
६७ चर्म्म साटक जातक ,,
६८ चुल्लक सेट्ठि जातक ,,
६९ राजोवाद जातक ,,
७० उच्छङ्ग जातक ,,
७१ वेदब्भ जातक ,,
७२ अनागत वंश ,,
७३ मिलिन्द प्रश्न ,,
७४ अभिधर्म कोष ,,
७५ बुद्धचरित ,,
७६ गंगा [भागलपुर]
७७ कल्याण-गोअङ्क(गोरखपुर)
७८ निरुक्त

धन्वन्तरि परिचय

—००—

नमस्कार भरद्वाज, धन्वन्तरि, तथा पुनर्वसु. आत्रेय आदि आयुर्वेद प्रवर्तक ऋषियों को। नमस्कार कृष्णद्वैपायन व्यास को।

भगवान धन्वन्तरि के नाम से भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति विशेषकर वैद्य समाज पूर्णतया परिचित है। वैद्य समाज धन्वन्तरि का ऋणी है। इन्होंने काय चिकित्सा के साथ शल्य प्रधान आयुर्वेद की सुश्रुत वैतरण भोज पुष्कलावत और औपधेनव आदि सैंकड़ों शिष्यों को शिक्षा देकर वैद्य समाज का भारी उपकार किया है। इसी हेतु आज भी इनके जन्म दिवस कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को भारत का वैद्य समाज कौने २ में उत्सव मनाकर धन्वन्तरि जी के प्रति कृतज्ञता प्रगट करता है। और साथ ही इनके सम्मान में अनेक वैद्य अपने औषधालयों के नाम भी धन्वन्तरि औषधालय रखते हैं। पत्रों के नाम रखते हैं अनेक अवसरों पर धन्वन्तयेनमः लिखते हैं आदि आदि। उधर भारत की साधारण जनता भी इनकी स्मृति में धन्वन्तरि त्रयोदशी को नये बर्तन खरीदती है। इस के अतिरिक्त भगवान धन्वन्तरि की चौबीस अवतारों के अन्तर्गत गणना होने के कारण भक्तजन विष्णु का अवतार मानकर श्रीराम तथा कृष्ण के समान पूजा भी करते हैं। किन्तु यह सब कुछ होते हुये भी। इनके सम्बन्ध में कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है। यह भारी

कमी है, खेद का विषय है। इसी अभाव की पूर्त्ति के लिए हमने विचारा है कि एक पुस्तक लिखी जाय। और उसमें धन्वन्तरि कितने हुए, किस युग में हुए, किस कुल में हुए, क्या क्या उनके कार्य रहे आदि बातों पर प्रकाश डाला जाय।

सब प्रथम मैं यह कह दूं कि धन्वन्तरि अनेक हुए हैं इन में से एक समुद्र मंथन के समय में भी मिले थे सर्व प्रथम हम उन्हीं पर लिखेंगे।

समुद्र मथन

एक वार ऋषि कश्यप की सन्तान (देव असुर और मानव आदि) ने समुद्र मध्यवर्ती तथा समुद्र के समीपवर्ती भूभागों की खोज की थी, जिसमें लक्ष्मी उच्चैश्रव अश्व आदि अनेक बहुमूल्य पदार्थ मिले थे उनमें हमारे उपास्यदेव धन्वन्तरि भी थे इसी खोज को पुराणकारों ने, समुद्र मन्थन नाम दिया है।

समुद्र मन्थन का उल्लेख १ स्कन्द पुराण, २ गरुड़ पुराण ३ बाराह पुराण ४ हरिवन्श ५ आग्नेय पुराण ६ ब्रह्म पुराण ८ बाल्मीकि रामायण ९ महाभारत १० मत्स्य पुराण ११ और श्री मदभागवत में है। जिनका मूल पाठ इस प्रकार है।

१ उदधेर्मध्य मानाच्च निर्गतः सुमहायशाः।
धन्वन्तरि रितिख्यातो युवा मृत्युञ्जयः परः॥
पाणिभ्यांपूर्ण कलशं सुधायाः परिगृह्य वै।

[स्क० पु० मा० ख० के० ख० १३। २]

२ यथा धन्वन्तरिर्नाम जातः क्षीरोदमंथने ।
देवादीनां जीवनाय ह्यायुर्वेद मुवाच ह ॥ ४२
विश्वामित्र सुतायैव सुश्रुताय महात्मने ।
(गरुड़पुराण आचार काँड अ० १४५)
३ तेसर्वे तत्र महिता ममन्थुर्वरुणालयम् । (वा०पु० ३५।१०)
४ त्रेतायां संप्रवृत्ताया मन्योन्य मनुजल्पिरे ।
सुरासुरगणाः सर्वे सहिता लवणाम्भसः
मन्दरं पुष्करं कृत्वा नेत्रं वासुकिमेव च । २६
समाः सहस्रं मथितं जलमौषधिभिः मह ।
धन्वन्तरिस्तथा मद्यं श्रीर्देवी कौस्तुभो मणिः ॥ २८
शशांको विमलश्चापि समुत्तस्थुः समन्ततः ।
उच्चैःश्रवः हयोरम्यः पीयूषंतदनन्तरम् । (हरिवंश ३।३०)
५ ततो धन्वन्तरि र्विष्णु रायुर्वेद प्रवर्तकः ।
बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्ण ममृतेन समुत्थितः । (आग्नेय पु०३।११)
६ देवाश्च दानवाः सर्वे ममन्थुर्वरुणालयम् । ब्रह्मपु० ३६ ।
७ मथ्यमाने ततः तस्मिन् क्षीराब्धौदेव दानवैः ।
बभूव वारुणी देवी मदा घूर्णित लोचना ॥
ततः शीतांशुरभवज्जगृहे तं महेश्वरः । ६६
जगृहुश्च विषं नागाः क्षीरोदब्धि समुत्थितम् । ६७
ततो धन्वन्तरिर्देवः श्वेताम्बरधरः स्वयम् ।
बिभ्रत् कमण्डलुं पूर्ण ममृतस्य समुत्थितः । ६८

श्रीर्देवी पयसस्तस्मा दुद्भूता धृत पङ्कजा । १०० ।

(विष्णु पुराण १ । ६)

८ ततो देवाऽसुराः सर्वे ममन्थुः रघुनन्दन । २७

देवानां मध्यतः स्थित्वा ममन्थुः पुरुषोत्तमः

अथ वर्ष सहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान् ।

उदतिष्ठन्त्स धर्मात्मा स दण्डः स कमण्डलुः ।

अथ धन्वन्तरि र्नाम अप्सराश्च सुवर्चसः । ३२

अप्सुनिर्मथनादेव रसात् त्तस्माद्वरास्त्रियः ।

षष्टिः कोटयोऽभवंस्ता सामप्सराणां सुवर्चसाम् ।

असंख्येयास्तु काकुत्स्थ यास्तासां परिचारिकाः ।

उच्चैःश्रवाः हयश्रेष्ठो मणिरत्नं च कौस्तुभम् ॥

(बाल्मीकि बाल कां० ४५)

९ ततस्तेन सुराः सार्द्धं समुद्रमुपतस्थिरे ।

तमूचु ग्मृतस्यार्थे निर्मथिष्यामहे जलम् । ९

अपांपतिथोवाच ममाप्यंशोभवेत्ततः ।

सोढास्मि विपुलं मर्द्दं मन्दर भ्रमणादिति । १०

मंथानं मन्दरं कृत्वा तथा नेत्रं च वासुकिम् ।

प्रसन्नात्मा समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्वलः ।

श्री रनन्तर समुत्पन्ना घृतात् पाण्डुर वासेनी ।

सुरादेवी समुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा ।

कौस्तुभस्तुमणिर्दिव्यं उत्पन्नो धृत संभवः ।

पारिजातस्तु तत्रैवं सुरभिस्तु महामुने । ३६ ।
धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत ।
श्वेत कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्रतिष्ठति ।
अमृतार्थे च लब्धयर्थेमहान्तं वैर मास्थिताः ।
[महाभारत आदि पर्व १८/३६]

१० मथ्यमात्रे पुनस्तस्मिन्‌जलधौ समदृश्यत ।
धन्वन्तरिः सभगवानायुर्वेद प्रवर्तकः ।
मदिरा चायता चोसा लोक चित्त प्रमाथिनी
ततोऽमृतं च सुरभिः सर्वभूत भयापहा ।
जग्राह कमलां विष्णुः कौस्तुभञ्चमहामणिम् ।
गजेन्द्रं च सहस्त्राक्षो हयरत्नं च भास्करः ।
धन्वन्तरिञ्च जग्राह लोकारोग्य प्रवर्तकम् ।
छत्रं जग्राह वरुणः कुंडले च शची पतिः । ४
पारिजात तरुर्वायुर्जग्राह मुदितस्था । स्कन्द पु०
धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मा नुदतिष्ठत ।५
श्वेतं कमण्डलुं विद्‌भृतं यत्रतिष्ठति ।

११ अथोदधेर्मथ्यमानात् काश्यपैमृरतार्थिभिः ।
उदतिष्ठन्‌ महाराज पुरुषः परमाद्‌ भुतः ॥३१॥
दीर्घ पीवर दोर्दण्डः कम्बूग्रीवो ऽरुणेक्षणः ।
श्यामं स्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरण भूषितः ॥ ३२॥
पीत वासा महोरस्कः सुमृष्ट मणि कुण्डलः ।

स्निग्ध कुंचित केशान्तः सुभगः सिंह विक्रमः ।३३।
अमृता पूर्ण कलशं बिभ्रद् वलय भूषितः ।
सवै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांश सम्भवः । ३४ ।
धन्वन्तरि रितिख्यात आयुर्वेद दृगिज्य भाक् ।

श्री भागवत ८ । ८ ।

पाठक गण समुद्र मन्थन का उल्लेख ११ ग्रन्थों का ऊपर दिया है। किन्तु श्री धन्वन्तरि जी के सम्बन्ध में भागवत का वर्णन सर्वोपरि है। अवतार में जो विशेषताएँ होनी चाहियें वे सभी दर्शाई गई हैं तथा स्पष्ट शब्दों में विष्णु का अवतार स्वीकार किया गया है। और यज्ञ भाग का अधिकारी भी स्वीकार किया है। अतः हम इसी का अनुवाद करेंगे।

समुद्र की खोज के समय एक ऐसे नवयुवक अद्भुत एवं महापुरुष मिले जिनकी भुजायें तथा ग्रीवा गरदन लम्बी तथा पुष्ट थीं। उसके नेत्र अरुण सुन्दर तथा आकर्षक थे। वर्ण श्याम किन्तु सुन्दर था। वक्षस्थल पुष्ट एवं चौड़ा था। केश चिकने थे। और उनका पराक्रम सिंह के समान था। उनके वस्त्र पीत वर्ण के सुन्दर और चमकीले मणि के कुण्डल कानों में सुशोभित थे। और हाथों में कडे धारण कर रक्खे थे। तथा एक हाथ में अमृत से भरा हुआ कलश (घड़ा) था। इस प्रकार के उपरोक्त लक्षणों से युक्त धन्वन्तरि विष्णु के अवतार यज्ञ भाग के अधिकारी और आयुर्वेद के प्रवर्तक थे। २४ अवतारों के प्रसङ्ग में भागवत २। ७ २१ में लिखा है। "धन्वन्तरिश्च भगवान स्वंय मेव कीर्ति नाम्ना

नृणां पुररुजां रुज आशु हन्ति ।

यज्ञे च भाग मम्‌ तायु रवाव रुन्ध आयुश्च वेद मनुशास्त्यव तीर्य लोके" अर्थात् धन्वन्तरि भगवान यज्ञ भाग के अधिकारी थे रोगों को दूर करने वाले थे। और आयुर्वेद के प्रवर्त थे।

इसी भागवत में अवतारों के प्रसङ्ग में धन्वन्तरि को ११ वां अवतार कहा है:—

सुराऽसुराणा मुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ।
दध्रे कमठ रूपेण पृष्ट एकादशे विभुः ॥
धान्वन्तरं द्वादशं त्रयोदश मेव च ।
अपाययत्सुरानन्यान् मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ।

(भागवत १ । ३ । १७)

समुद्र मंथन के समय मन्दर पर्वत निवासियों को धारण करने के लिये कच्छप का रूप बनाया इसकी संख्या ११ वीं है। धन्वन्तरि जी को संख्या १२ वीं है। और सुन्दरी बनकर असुरों को मोहित किया इस मोहिनी अवतार की संख्या १३ वीं होती है।

इस प्रकार केवल समुद्र मन्थन के ही समय में विष्णु के तीन अवतार हो गये थे।

समुद्र मथन के समय उपलब्ध होनेवाले पदार्थ

समुद्र मंथन के समय धन्वन्तरि के अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी हस्तगत हुये थे, जिनको शब्दान्तर से सभी इतिहास ग्रन्थों ने वर्णन किया है और उन पदार्थों के नाम ये हैं।

वारुणी या मदिरा, विष, अपसराएँ, छत्र, कुंडल, अमृत गौएँ, कौस्तुभ मणि, उच्चैःश्रव नाम का घोड़ा हस्ति जिसका नाम ऐरावत था। वारुणी को असुरों ने लिया। छत्रवरूण ने कुंडल ऐरावत और उच्चैःश्रव अश्व इन्द्र ने। अपसराएँ देव लोक को गई। विषपान महादेव जी ने किया। अमृत और लक्ष्मी को सभी ने चाहा किन्तु अमृत देवों ने पिया और लक्ष्मी जी विष्णु की पत्नी बनी। इसके साथ ही बहुमूल्य कौस्तुभ मणि भी विष्णु को मिली।

वक्तव्य—प्रायः सभी ग्रन्थ कहते हैं कि विषपान महादेव जी ने किया किन्तु विष्णु पुराण में लिखा है कि विष भाग नागोंने ग्रहण किया। "जगृहुश्च विषं नागाः" भागवत ने धन्वन्तरि के वस्त्र पीले बताये हैं किन्तु विष्णु पुराण ने श्वेत वस्त्र लिखे हैं। "श्वेताम्बर धरः स्वयम्"। कुंडल देवराज इन्द्र ले गये थे इससे सभी सहमत है किन्तु भागत में कहा है कि कुडल नागों के पास रहे। नागाश्च कुडले" मानव सर्वदा देवों के साथ रहे थे किन्तु लक्ष्मी को देखकर उन्होंने भी उसकी प्राप्ति की इच्छा की थी। 'तस्यांचक्रुः स्पृहां सर्वे सुराऽसुर मानवाः"-(भागवत) इससे यहभी सिद्धहै कि समुद्र मन्थन में मानव भी सम्मिलित थे।

वरूण देव जाति के हैं यह सर्व विदित है किन्तु जब उनके राज्य में देव और असुरों ने खोज करने की इच्छा प्रगट की तो वरूण ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "अपांपतिरथो वाच ममाप्यं

शोभवेत्तत:"—[महाभारत] अर्थात् इस मन्थन खोज या रिसर्च में उपलब्ध होने वाले पदार्थों में मेरा भी अंश या भाग रहेगा। धन्वन्तरि समुद्र मन्थन के समय मिले किन्तु वे भारत में रहे या त्रिविष्टप् (तिब्वत) गये और भारत में भी रहे तो कहां रहे इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता किन्तु हर्ष है इसका कुछ संकेत मत्स्य पुराण ने दिया है वह इस प्रकार है-"गजेन्द्रं च सहस्त्राक्षो हयरत्नंच भास्करः। धन्वन्तरि च्चजग्राह लोका रोग्य प्रर्वतकम्। गजेन्द्र को इन्द्र ने ग्रहण किया और उच्चैःश्रव अश्व को तथा धन्वन्तरि को भास्कर ने लिया। यहाँ पर भास्कर का अर्थ भी इन्द्र ही है। भास्कर का पर्याय आदित्य है। आदित्य १२ हैं उनमें इन्द्र भी है। अन्य ग्रन्थों से भी यही ज्ञात होता है कि अश्व इन्द्र के ही पास था सूर्य के पास किसी ने नहीं कहा है। अतः हाथी घोड़ा और धन्वन्तरि को इन्द्र देव स्वर्ग ले गये थे यह निश्चय सा मालूम होता है। अन्यथा जिस प्रकार अश्व हस्ति कुंडल कौस्तुभ मणि लक्ष्मी का स्थान स्थान पर उल्लेख मिलता है इनका भी कुछ न कुछ होता।

लक्ष्मी

जिस लक्ष्मी को विष्णु भगवान अपनी स्त्री बना कर लाये थे। वह प्रसिद्ध ऋषि भृगु की पुत्री थी।

विष्णु पुराण में लिखा है 'भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मी विष्णु परिग्रहः। तथा धातृ विधातारौ ख्यात्यां जातौ सुतौ भृगोः। (विष्णु पु० १। १०)

भृगु ऋषि की ख्याति नाम की स्त्री थी इससे धाता और विधाता नाम के दो पुत्र और लक्ष्मी नाम की एक कन्या हुई यह लक्ष्मी विष्णु की स्त्री बनी। स्मरण रहे इसी भृगु के हिरण्य कशिपु की कन्या दिव्या से शुक्राचार्य पुलोम दानव की पुत्री पौलोमी से च्यवन पुत्र भी थे। भृगु का निवास समुद्र तट पर भृगु कच्छ था जिस को आज भरौंच कहते हैं। इन्हीं के वंशज दधीचि जमदग्नि परशुराम आदि थे।

अवतार समस्या

अवतार अनेक हुए हैं जिनमें श्रीराम तथा श्री कृष्ण प्रमुख हैं। इन्होंने मनुष्य योनि में जन्म लेकर जीवन पर्यन्त असाधारण कार्य किये थे।

बाराह, कच्छप, नरसिंह और मोहिनी भी विष्णु के अवतार माने जाते हैं। इन्होंने माता के गर्भ से जन्म नहीं लिया बल्कि कार्य विशेष के निमित्त कुछ ही समय के लिए शरीर की बनावट एवं वेषभूषा में परिवर्तन मात्र किया था। जैसा कि नाटकों में प्रति दिन होता है। बहु रूपियाओं में भी इस परिवर्तन को देखा जा सकता है।

और हमरे इस कथन को विष्णु भगवान ने महादेव जी से स्वयं स्वीकार किया है। घटना इस प्रकार है—समुद्र मंथन के समय जो विष्णु भगवान ने स्त्री का वेश बनाया था उस वेश ने महादेव जी को अधिक प्रभावित किया था। अतः महादेव जी

ने विष्णु भगवान से पुनः स्त्री वेश को बनाने की प्रार्थना की थी। इस पर विष्णु ने महादेव से कहा है कि—'एव मभ्यर्थि तो विष्णु भगवान शूल पाणिना। प्रहस्य भाव गम्भीरं गिरिशं प्रत्य भाषत। कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृता'। (भागवत ८।१२।१४)

महादेव जी के कथन पर विष्णु कुछ हंसे और कहा कि दैत्यों को मोहित करने के लिये ही मैंने स्त्री का वेष बनाया था।

उपरोक्त स्त्री वेश को प्रायः सभी पुराणों ने लिखा है जिनके उदाहरण ये हैं।

"अमृते निर्मिते पूर्वं विष्णु स्त्री रूपमा स्थितः। (हरिवंश २।२२।

मायया मोहवित्वा तान् विष्णुः स्त्री रूप संस्थितः।

विष्णु पुराण१।६

' स्त्री रूप मतुलं कृत्वा दानवानभि संश्रितः (मत्स्य पु० २५१)

"स्त्री रूप मदभ्रुतं कृत्वा दानवानभिसंश्रितः"।

(महाभारत आ० प०।१८।४६)

स्त्री रूप का त्याग

अमृत के विभाजन के वाद जब समुद्र तट पर ही युद्ध प्रारंभ हो गया तब तत्कालही विष्णुने स्त्रीके वस्त्रों को फैंककर शस्त्र लेकर रण क्षेत्र में आ कूदे।

" विहाय भगवांश्चपि स्त्रीरूप मतुलं हरिः।

नाना प्रहरणैर्भीमैः दानवान् सम कल्पयत् (मत्स्य पु० २५१)

बाराह, अवतार के सम्बन्ध में हरिवंश ने कहा है—

वाराहरूपमास्थाय प्रोज्जहारार्णवान्महीम् ।

[हरिवंश २।२२।४०]

विष्णु वाराह अथवा सूकर का रूप बना कर समुद्र से पृथ्वी का उद्धार किया। अर्थात् समुद्र समीप वासी दैत्यों से छीन कर अपना अधिकार किया।

वस्तुत: अवतार ऐसा विवादास्पद विषय नहीं है जैसा कि लोगों ने बना दिया है अवतार का सीधा साधा अर्थ है असाधारण प्रतिभा, असाधारण शक्ति एवं कार्य जिसके हों वह अवतार है। इसी आधार पर महर्षि व्यास तथा महात्मा गौतम बुद्ध जैसों की गणना भी अवतारों में है। श्री मद्भगवद्गीता ने भी इसी अभिप्राय को व्यक्त किया है-'यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्त देवाव गच्छध्वं मम तेजोंऽश संभवम्" । (गीता १०।४१)

इसी आधार श्री मद्भागवत में अवतारों को असंख्य कहा है। "अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः। भागवत ११३।२५

अभिप्राय यह है कि सृष्टि या प्रकृति के नियमानुसार समय समय पर जो महापुरुष जन्म लेते हैं वे सभी अवतारों की श्रेणी में हैं।

समुद्र मंथन का कारण

प्रश्न यह है कि देवों को समुद्र मन्थन की आवश्यकता क्यों हुई। और दैत्य जो देवों के विरोधी थे उन्होंने अपने अधिकार क्षेत्र में क्यों मन्थन होने दिया और क्यों इस कार्य में भागलिया।

इसका कारण यह था कि उस युग में देव और दैत्य दानवों में दायनिमित्त अथवा अधिकार निमित्त परस्पर युद्ध हुआ करते थे । 'तेषां दाय निमितं तु संग्रामा वह वोऽभवन्' । मत्स्य पुराण ४७ । ४१ (ब्रह्माण्ड पुराण ३।७२) महाभारत में अधिक स्पष्ट कहा है ।

'असुरा श्चैव देवाश्च दक्षस्यासन् प्रजापतेः ।
अपत्य वहुलं तात संस्पर्धन्तं परस्परम्' ।

(महाभारत अश्वमेध पर्व ५ । ३)

देव और असुर एक ही पिता की सन्तान थे । किन्तु इन की वंश वृद्धि अधिक हो गई थी अतः अधिकारों के लिये परस्पर लड़ा करते थे । वृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है ।

दूया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च ततः कनीयसाएवदेवा ज्यायसां असुराः त एषु लोकेषु अस्पर्धन्त तेह देवा ऊचुर्हन्ता सुरान्यज्ञ उद्गीथेनात्ययामेति ॥ बृहदारण्यकोपनिषद् अ० १ ब्रा० ३ = मं० १।

प्रजापति कश्यप की सन्तान देव और असुरों में युद्ध होते रहते थे वे दोनों ही लोक अर्थात राज्यों पर अधिकार चाहते थे तब देवोंने यज्ञ अर्थात संगठन करके विजय करने का विचार किया था ।

इनके युद्धों का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण ने भी किया है ।

'देवाश्च वा असुराश्च उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे' [शतपथ]

और भी 'देवाश्च वा सुराश्चोभये प्राजापत्याः अस्मिँल्लोके अस्पर्धन्ति' [शतपथ का १३ । अ० ८]

बामन पुराण में लिखा है कि देव और असुरों के युद्ध तीनों लोकों पर राज्याधिकार के लिये हुआ करते थे।

त्रैलोक्यमाकांक्षिभि रुग्रवेगैः सुरासुरैर्नारद संप्रबुद्धैः" ।

(बामन ९ । ५०)

बाराह नरसिंह और बामन अवतार समुद्र मंथन, तारकामय त्रिपुरवध या दाह अन्धक वृत्रासुर हालाहल और आडावक नाम के पुराण प्रसिद्ध युद्ध सब अधिकार निमित्त ही हुए थे ।। सूर्यवंशी रिपुंजयअथवा ककुत्स्थ आडीवक युद्धमें ही देवोंका सहायक बनाथा। क्योंकि मानव देवों के वंशज थे† या यों कहिये देव वंश की शाखा थे ।। अतः पुरंजय दशरथ खट्वांग दुष्यन्त आदि अनेक भारतीय राजाओं ने युद्धों में देवों की सहायता की थी ।।

किन्तु असुरों के गुरु शुक्राचाय संजीवनी विद्या के वल से असुरों को जीवित करलिया करते थे।। इसके अतिरिक्त दैत्य दानव हृष्ट पुष्ट स्वस्थ तथा दिव्य शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता, कूट योधी तथा युद्ध विशारद थ ।। अतः युद्धों में देवों की ही मृत्यु अधिक होती थीं ।।

अब हम अन्य ग्रन्थों का आश्रय न लेकर इस विषय को भागवत के अनुसार लिखेंगे ।।

---

† सूर्य इन्द्र और हिरण्य कशिपु ऋषि कश्यप के पुत्र थे। सूर्य का मनु और मनु वंशज मानव कहलाये।

राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से समुद्र मंथन के सम्बन्ध में पूछा था ।। उसके उत्तर में शुकदेवजी ने कहा था कि जब देवासुर संग्रामों में असुरों द्वारा देवों का भारी संख्या में मरण हुआ था† ।।

इस जन हानि की गम्भीर समस्या पर विचार करने के लिये इन्द्र, वरुण तथा महादेव आदि देवताओं ने परस्पर विचार विनिमय किया किन्तु किसी निश्चय पर पहुंचने में असमर्थ रहे । इसके बाद वे सब मिलकर मेरु पर्वत पर जोकि देवों का ही देश था ब्रह्मा जी के पास गये । ब्रह्मा जी सब देवताओं को साथ लेकर विष्णुजी के पास गये ।। विष्णु ने आद्योपांत समाचार सुनकर देवों को परामर्श दिया कि, आप लोग सबसे पहिले दैत्य दानवों के पास जाकर मित्रता करो । मित्रता करने के बाद समुद्र मंथन द्वारा अमृत प्राप्तकरो, अमृत पान से आप अमर होजांयगे ।। अमृत प्राप्ति में वासुकि नाग तथा मन्दर पर्वत वासियोंका सहयोग भी प्राप्त करो ।। इस प्रकार देवों को आदेश देकर विष्णु भगवान चले गये ।।

इसके बाद ब्रह्मा और शिव अपने अपने घरों को चले गये और देवता गण दैत्य राज वलि के पास च गये । वलि की राजधानी पाताल देश (दक्षिण भारत का कुछ भू भाग) के अन्तर्गत त्रिपुर नामक नगर में थी । वहां जाकर इन्द्र ने मधुर वाणी से वलि को अपना अभिप्राय सुनाया । किन्तु शम्वर, अरिष्टनेमि आदि त्रि

† यदा युद्धेऽसुरैर्देवा वाध्यमानाः शितायुधैः ।
गता सर्वो निपतिता नोत्तिष्ठेरन स्मभूयशः ।। भागवत ८।६।१५

वासियों को इन्द्र का आना और इन्द्र का कथन पसन्द नहीं आया§। किन्तु बलि ने इन्द्र की बात को सुनकर उससे सहमति प्रगट की और मन्दर पर्वत वासियों को बलात् साथ में लेकर समुद्र मन्थन लिये प्रस्थान किया। चलते समय विष्णु भी आ गये थे और साथ में बलि का पिता वैरोचन भी गया था‡।

वक्तव्य—भागवत का समर्थन मत्स्य पुराण ने इन शब्दों में में किया है मत्स्य ने लिखा है कि देवासुर संग्राम में दैत्यों द्वारा देवता सैंकड़ों और हजारों की सख्या में मारे जाते थे।

पुरा देवाऽसुरा युद्धे हताश्च शत शः सुराः।
"हन्यमाना स्ततो देवाः शत शोऽथ सहस्त्र शः" ।(मत्स्य ३४६)

विष्णु पुराण ने लिखा है कि जब दैत्यों द्वारा इन्द्रादिक देवता परास्त हो गये तब अग्नि और इन्द्रादिक देवता ब्रह्मा जी के पास गए।

"विजिता स्त्रिदशा दैत्यै रिन्द्राद्याः शरणंय युः।
पितामहं महाभागं हुताशन पुरोगमाः। (वि० पु० १। ६)

ब्रह्मा ने देवों को सम्मति दी थी कि समुद्र मथन में वरुण की भी सहायता ली जानी चाहिए।

"सहायं वरुणं कृत्वा" ।(मत्स्य पु०२४६)

पाठक तनक दैत्य राज बलि की उदारता को देखिये। जब इन्द्र ने बलि के पास जाकर कहा कि—

---

§ शम्बरोरिष्ट ने मिश्च ये च त्रिपुर वासिनः। भागवद् ८। ६। ३१

‡ २ शक्रवैरोनादयः भागवत ८।६।३४।

अलं विरोधेन वयं भृत्यास्तव बलेऽधुना" । मत्स्य पु० २४६ । १७

हे दैत्यराज बलि परस्पर के विरोध को समाप्त करो। और मुझे अपना नौकर समझ कर समुद्र मन्थन का उद्योग करो, तथा सहायता के लिये वासुकि नाग† को भी बुलालो। इसपर दैत्यराज बलि ने कहा हे देवराज इन्द्र मैं तुम्हारी नम्रता से प्रसन्न हूं। जो कहोगे वही करूंगा आप निश्चिन्त रहिए। अमृत मंथन करके तुमको दूंगा। मैं यह अच्छी तरह से जानता हूं॥

सुदूरादाश्रयं प्राप्तान् प्रणतानपि वैरिणः।
यो न पूजयते भक्त्या प्रेत्य चेह विनश्यति॥

मत्स्य पुराण २४६। २२।

अर्थात दूर से आया हुआ चाहे शत्रु ही हो, यदि वह आत्म समर्पण करता है तो उसका सम्मान करना चाहिये अन्यथा वह नष्ट होजाता है। अतः आपका पालन मैं अवश्य करूंगा। अर्थात आपके भोजनादि का व्यय मैं सहन करूंगा।

इसके बाद बलि ने अपने पड़ोसी वासुकि नाग को भी बुला कर साथ में लेलिया। वासुकि भी पाताल में ही रहता था और इस की राजधानी भोगवती नाम की नगरी थी। इसके बाद सुर, असुर, नाग आदि सब मिलकर वरुण के पास गये क्योंकि ये भी कुछ प्रदेश के राजा थे। उनसे भी आज्ञा लेना अनिवार्य था। वरुण का

† त्रिपुर नगर के पास ही भोगवती नगरी थी वह वासुकि नाग की राजधानी थी।

राज्य पश्चिम दिशा में समुद्र के बिलकुल समीप था, या समुद्र के मध्यवर्ती किसी टापू में था§ वहां जाकर अपना समुद्र मंथन का अभिप्राय प्रगट किया तो वरुण ने भी यह शर्त पेश करदी कि उपलब्ध होने वाले पदार्थों में मेरा भी भाग रहेगा। मांग उचित ही थी। अत: इसको स्वीकार किया गया और कार्य प्रारम्भ हुआ और मन्थन के समय जो पदार्थ मिले उनका विभाजन किस प्रकार हुआ यह लिखा जाचुका है।

❀ वक्तव्य समाप्त ❀

अमृत का विभाजन

अमृत निकलने या मिलने के पश्चात सुर असुरों में विवाद बढ़गया। अमृत का कलश दैत्यों ने छीन लिया एक संकट उपस्थित होगया तब कूट नीतिज्ञ व्यवहार कुशल विष्णु भगवान ने सुन्दर स्त्री का वेश बनाया उस अवस्था का नाम मोहिनी अवतार है। सुन्दरि को देखकर दैत्य आसक्त (आशिक) हुए। देवता तो मोहित होते ही क्यों उनके समक्ष तो स्त्री का वेश बनाया ही था। अत: उन्हें वस्तु स्थिति का ज्ञान था। किन्तु फिर भी असुरों ने अपने मस्तिष्कों के सन्तुलन को नहीं जाने दिया॥ और मोहनी से जो कहा है वह विचारणीय है इस कथन से ज्ञात होता है कि वे कितने विवेकशील तथा गंभीर विचारक थे।

---

§ कश्यप स्यौरसः पुत्रः सलिलान्तर्गतः सदा ।
अम्बुराज इति ख्यातः प्रतीच्यां दिशि पार्थिवः ॥ हरिवंश ३।३७.२३

"सात्वं नः स्पर्धमानाना मेकार्थानां न भामिनी।
ज्ञातीनां बद्ध वैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥६॥
वयं कश्यप दायादा भ्रातरः कृत पौरुषाः।
विभजस्व यथान्याय नैव भेदो यथा भवेत् ॥
इत्युपामंत्रितो दैत्यैर्मायां योषिद्वपुर्हरिः" ॥ भागवत ८।८

दैत्य कहते हैं कि हे मोहिनी हम सब ही ऋषि कश्यप की की सन्तान हैं, अतः भाई भाई हैं। हम सभी ने मंथन कार्य में परिश्रम किया है! किन्तु हम में परस्पर विरोध पुराना है और आज केवल एक वस्तु के लिए परस्पर प्रतिस्पर्धा है। सन्देह है पुराना विरोध उग्र रूप धारण कर के हमारा नाश न करदे। अतः आप अमृत का न्यायानुकूल विभाजन करदें ताकि हम में विवाद न हो। किन्तु इस प्रार्थना को मोहिनी ने हंसकर टाल दिया और अमृत को चतुराई से देवों में बांट दिया। परिणाम स्वरूप मंथन क्षेत्र युद्ध क्षेत्र में परिणत होगया॥ इस युद्ध में देवों की विजय और असुरों की पराजय हुई।

एक बार संकट काल में इन्द्र ने भी राजा बलि के सामने अपने को भाई बताया था। बात यह थी कि बलि को अवसर मिला वह इन्द्र को मारना चाहता था किन्तु नारद ने बलि को रोक दिया ‡। तब इन्द्र ने बलि से कहा था कि

‡ नारदेन तदा दैत्यः बलिश्च बलिनांवरः।
निवारित स्तद्वधा च्चैव वाक्यैरुच्चा वचैस्त था।
(स्क० पु० म० ख० के० ख०)

वयं कश्यम दायादा यूयं सर्वे तथैव च।
यथा वयं तथा यूयं विग्रहो हि निरर्थकः।

(स्क-पु० मा० ख० कौ० ख० ६।४)

अर्थात् हम तुम दोनों ही कश्यप की सन्तान हैं, अत: हम तुम सब एक हैं फिर झगड़ा ही व्यर्थ है।

अमृत—अमृत का अर्थ पौष्टिक पदार्थ है इसके सेवन से बल बढ़ता है। गुडूची जल हरीतकी और चूना आदि के भी अमृत नाम हैं। चूना को संस्कृत में सुधा कहते हैं, सुधा और अमृत पर्यायवाची हैं। चूना को अंग्रेजी में कैलशियम कहते हैं कैलशियम हृद्य है शक्तिवर्द्धक आदि इसके गुण हैं। किन्तु यह सर्वथा असंभव एवं प्रकृति के नियम के विरुद्ध है कि मृत्यु को रोक सकें।

"जातस्यहि ध्रुवो मृत्युर्मृत्युजन्म ध्रुवस्य च"
"अद्य वापि शतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवम्।

आदि आदि।

व्यास जी ने अर्जुन से कहा है कि—

"देवाः मनुष्याः पशवस्तरवश्च सरीसृपाः।
सृष्टाः कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति संक्षयम्"।

(ब्रह्माण्ड पु० १०३।५८)

बौद्ध ग्रंथ अनागत वंश में लिखा है कि—

ब्रह्माऽसुरा सुरगणा च महानुभावा गन्धव्व किन्नर महोरग रक्खसा च। ते चापरे च मरणाग्गि सिखाय सव्वे अन्ते

पतन्ति सलभा इव खीण पुन्त्रा । १६

ब्रह्मा देवता असुरगण गन्धर्व, किन्नर, नाग राज्ञस आदि सभी जातियाँ मृत्यु को प्राप्त होती हैं ।

महात्मा बुद्ध ने आनन्द से कहा था कि सैंकड़ों इन्द्र चले गये सदा कोई नहीं रहता । (बुद्ध चरित भाग २)

पुराण—पुराणों के देख ने से भी यही ज्ञात होता है कि अमृत नामक पदार्थ पीने के बाद भी देवों की मृत्यु होती रही हैं। अमृत पान के बाद ही समुद्र तट पर जो युद्ध हुआ है उसमें दोनों पक्ष मारे गये हैं।

'निकृत्तवाहु शिरो धराङ्ग्रयश्छिन्न ध्वजेष्वा सतनुत्र भूषणाः।

(भागवत ८।११।३७)

समुद्र मंथन के कुछ दिन बाद जो देवासुर संग्राम हुआ था जिस में दैत्यों की विजय हुई थी उसमें रक्त की नदियां वहीं थी उसमें सैंकड़ों और हजारों की संख्या में देवों की मृत्यु हुई थी।

"तस्य वाण निपातैश्च हता वै शतशः सुराः । ७
सायुधानच्छिनत् क्रुद्धः शतशोऽथ सहस्त्रशः" ।

(हरिवंश ३।२८)

देवों के मरण के प्रमाण इतिहास में पदे पदे मर मिलते हैं। अब हम इस विषय को यहीं समाप्त कर के आगे बढ़ेंगे।

मन्दर—कहा जाता है कि मन्दर पर्वत को मन्थान या मथनी बनाया था । इस का सीधा अर्थ है कि मन्दर पर्वत के निवासियों

को मंथान के स्थान पर रक्खा था। मन्दर तिब्बत के पास था यह मेरू पर्वत के पूर्व में और गन्ध मादन † (जिसे आज कल बद्रीनाथ कहते हैं) मेरु से दक्षिण में था।

"पूर्वेण मन्दरोनाम दक्षिणे गन्ध मादनः"।

(विष्णु पु०)

मन्दर पर्वत प्राचीन काल में बड़ा सुन्दर था और इस पर देवता किन्नर और अप्सरस गण रहा करते थे।

"मन्दर पर्वतवरं लताजाल समा कुलम्।
किन्नरै रप्सरो भिश्च देवैरपि च सेवितम्"।

(म० भा० आ० १०-१८)

वस्तुतः बात यह है मन्दर का मंथान बनाया वासु कि नाग का नेती बनाई यह सब व्यूह रचना है युद्ध में भी यह व्यूह रचना होती है सूची व्यूह शकट व्यूह चक्र व्यूह आदि इसके प्रमाण हैं। अतिरिक्त इसके पुराणों में आलङ्कारिक भाषा का प्रयोग अधिक है इस पर लोग चौंकते हैं मैं पूछता हूं यह आलङ्कारिक भाषा का प्रयोग है कहाँ नहीं आयुर्वेद में काफी है उपनिषद् और वेद भी इस के अपवाद नहीं हैं।

श्वेताश्वर उपनिषद कहा हैं कि एक बकरी है उस के लाल

† प्राचीन काल में गन्धमादन में बड़ी सुन्दर एवं समृद्धशाली विशाला नाम की नगरी थी। और यहां बड़ी मात्रा में जन समुदाय निवास करता था। यही पर कलाप ग्राम था।

सफेद और काले तीन वर्ण हैं उसकी बहुत सी सन्तान हैं।

"अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णाँ बह्वीः प्रजाः सृजमानाः"।

यह बकरी के नाम से प्रकृति का वर्णन है। इसमें सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण का वर्णन क्रमशः श्वेत रक्त और कृष्ण बताया है।

" द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति
(ऋग्वेद १। १६४। २०)

दो पक्षी हैं, वे दोनों मित्र हैं, एक ही वृक्ष पर साथ साथ रहते हैं। उनमें से एक मीठा फल खाता है और दूसरा केवल द्रष्टा मात्र है। इस मन्त्र में संसार को वृक्ष मानकर जीवात्मा और परमात्मा का वर्णन किया है। यही मन्त्र हू बहू मान्डूक्यो पनिषद् अ १ ब्रा० ३ मं० १ में भी है।

आयुर्वेद—आयुर्वेद में ज्वर के सम्बन्ध में लिखा है कि—

"ज्वरस्तु महेश्वर कोप प्रभावः"। (च० नि० १)

ज्वर महादेव के प्रकोप से उत्पन्न हुआ है॥

"रुद्रकोपाग्नि संभूतः सर्वभूत प्रतापनः"
(सु० उत्त० तं० ३६)

प्राणियों को दुख देने वाला ज्वर रुद्र की क्रोधाग्नि से उत्पन्न हुआ है, माधवाचार्य ने लिखा है कि—

दक्षापमान संक्रुद्धरुद्र निःश्वास सम्भवः" (माधवनिदान)

अर्थात दक्ष के अपमान से क्रुद्ध महादेव के श्वांसों से ज्वर उत्पन्न हुआ था, किन्तु यह सब आलंकारिक भाषा है इस का सीधा साधा अर्थ है कि दक्ष प्रजापति ने कनखल में यज्ञ किया था उसमें विष्णु, इन्द्र तथा सभी देवों को निमन्त्रण दिया था॥ किन्तु दौर्भाग्य से अपने दामाद महादेव जी को निमन्त्रित न कर के एक प्रकार का वहिष्कार ही किया था॥ महादेवजी ने इसको सहन किया किन्तु सती जो दक्ष की पुत्री थी वह अनाहूत भी आ गई उसके साथ में भी दक्ष का व्यवहार अशिष्ट ही रहा। अन्त में शिवजी ने अपनी सेना भेजकर यज्ञ को विध्वंस कराया. वीरभद्र ने ब्रह्मा को और मणिमान गण ने भृगु को बांधकर डालदिया किसी ने अग्निकुण्ड में मूता किसी ने वेदी को नष्ट भ्रष्ट कर दिया भग देवता की आंख फोड़दी, पूषा के दाँत तोड़ दिये, देवों के टुकड़े टुकड़े काट कर डालदिये इस प्रकार शिवजी की सेना द्वारा देवता पराजित होकर भागे थे†। तब ही उनको ज्वर ही नहीं अनेक रोग उत्पन्न हुए थे§। जो देवता ज्वर से पीड़ित होगए थे उनको गिन गिन कर विष्णुने चिकित्सा के लिए अश्विनीकुमारों को दिये थे।

---

† अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः।
संछिन्न भिन्न सर्वाङ्गाः सर्त्विक सभ्या भया कुलाः। भागवत ४। ६

§ गणान् पराङ् मुखान् दृष्ट्वा सर्वेतेव्याधयोभृशम।
रुद्र कोपात् समुद्भूता देवांश्चापि प्रदुद्रुवुः॥
स्कन्द पुराण मा० ख० के० ख०। ४

" ज्वरैस्तु पीडितान् देवान् दृष्ट्वा विष्णुर्हसन्निव ।
देवाश्विनौ तदाहूय व्याधीन् हन्तुं तदाभृतिम् ॥
ददौताभ्यां प्रयत्नेन गणयित्वा सुबुद्धिमान् ॥ ६७ ॥
विज्वरानथ देवांश्च कृत्वा मुमुदतुश्चिरम् ॥

(स्क० पु० मा० ख० के० खं० १३)

इसकी पुष्टि आयुर्वेद की चरक संहिता से भी होती है। चरक संहिता में लिखा है कि अश्विनी कुमारों ने दक्ष के कटे हुए शिर को जोड़ा, पूषा के टूटे हुए दांतों को लगाया और भग देवता के नष्ट नेत्रों को पुनः ठीक किया था।

" अश्विनौ देव भिषजौ यज्ञवाहा वितिस्मृतौ ।
दक्षस्यहि शिरश्छिन्नं पुनस्ताभ्यां समाहितम् ॥
प्रशीर्णा दशना पूष्णो नेत्रेनष्टे भगस्य च ।

(च० चि० अ० १ पा० २ । ७८)

काश्यप संहिता में स्पष्ट लिखा है कि दक्ष यज्ञ के अवसर पर महादेव की सेना बध न कर डाले इस भय से देवता और ऋषिगण भागे थे तब उनको ज्वर, गुल्म, प्लीहा, अतिसार, तृष्णा रक्त,पित्त हिक्का श्वास, कास आदि अनेक रोग उत्पन्न हुए थे।

" दक्ष यज्ञे वधत्रासाद् देवर्षीणां पलायताम् ।
रोगाः सर्वे समुत्पन्ना सन्तापाद् देह चेतसोः । १४
ज्वरो गुरुत्वाद् गुल्मस्तु धावतां प्लवनात् प्लीहा ।
श्रमो विषादाद्विड भेदो धावतां बेगधारणात् ॥ २५
तृष्णाच रक्तपित्तंच श्रमादुष्णोच धावताम् ।

हिक्काश्वासौ कफाधिक्याद्धावतां पिवतां जलम् । १६
प्रागुत्पत्तिस्तथा न्येषां रोगाणां परिकीर्तिता ।
कृतत्रेतान्तरत्वेन प्रादुर्भूता यथा नृणाम् ॥

(काश्यप संहिता पृ० १६०)

कुछ शब्दान्तर से चरक संहिता ने भी उक्त घटना का वर्णन किया है ॥ चरक ने प्रमेह कुष्ट, उन्माद तथा अपस्मार का भी उल्लेख किया है ।

" तस्मिन् हि दक्षाध्वरोद्ध्वंसं देहिनां दिक्षु विद्रवता मतिसरण स्रवन लघनाद्यैर्देह विक्षोभनैः पुरागुल्मोत्पत्ति-रभूत् । हविष प्राशनात् मेह कुष्टानां तपोऽपवास शोकै रुन्मादानां विविध भूताऽशुचि संस्पर्शादपस्माराणाम् ।

(च० नि० अपस्माराधिकार)

चरक चिकित्सा स्थान में लिखा है कि जब दक्ष यज्ञ में महादेव को भाग नहीं मिला तो उन्होंने ललाट में तीसरा नेत्र उत्पन्न किया उससे देवों को जलाया और फिर क्रोधाग्नि से सन्तप्त बाण यज्ञ नष्ट करने को छोड़ा था जिससे देवादिक प्राणी भयार्दित एवं दुखी होकर इधर उधर भागने लगे थे ।

सृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वैदग्ध्वातान सुरान् प्रभुः ।
बाण क्रोधाग्नि संतप्तमसृजत् शत्रु नाशनम् ।
ततो यज्ञः सविध्वस्तो व्यथिताश्च दिवौकसः ।
दाह व्यथा परीताश्च भ्रान्ता भूत गणादिशः ॥

(च० चि० ३)

कहांतक लिखें यदि इसी प्रकार के आलंकारिक भाषा के प्रमाणों को लिखा जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ बनेगा ॥ अब इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं।

—०—०—

समुद्र मंथन का समय

अब इस पर विचार करना है कि समुद्र की खोज किस मन्वन्तर तथा किस मास और तिथि में प्रारम्भ हुआथा। बाराह पुराण में लिखा है कि—

"तथैव पौष मासेतु अमृतं मथितं सुरैः।
पौष मासस्य या शुक्ला दशमीति निगद्यते"।

(वा० पु० ४० । २)

बाराह पुराण के अनुसार समुद्र मन्थन पौष मास शुक्ल पक्ष और दशवीं तिथि को आरम्भ हुआ था।

उपरोक्त पाठ में बाल्मीकि ने समुद्र मन्थन का समय सतयुग लिखा है।

"पूर्वं कृत युगे राम दितेः पुत्राः महाबलाः"।

मालूम ऐसा होता है कि लेखकों के प्रमाद से पाठ भ्रष्ट हो गया है। अस्तु। जो कुछ हो यह असंगत है समुद्र मथन आद्य त्रेता युग में भी स्वायंभु आदि छ मनु बीत चुके थे तब सातवां वैवस्वत मनु के काल में समुद्र मन्थन हुआ था।

"आद्ये त्रेतायुगे पूर्व मासन् स्वायंभुवेन्तरे" ।

(ब्रह्माण्ड २ । ३६ । ६०)

"त्रेतायुगेतु प्रथमे पौत्रः स्वायंभुवस्यतु" ।

(ब्रह्माण्ड २ । ३६)

उपरोक्त प्रमाण से यह सिद्ध है कि स्वायभुव मनु तथा उसका पौत्र ध्रुव भी आद्य त्रेता युग में हुए थे । †

स्वायंभुव मनु के बाद अग्नि का पुत्र स्वारोचिष नाम का मनु हुआ था । इसके बाद उत्तम प्रियव्रत का पुत्र हुआ । फिर उत्तम का ही भाई तामस नाम का मनु हुआ फिर तामस का ही भाई रैवत नाम का मनु हुआ । इसके बाद चाक्षुष नाम§ का मनु हुआ था । चाक्षुष मन्वन्तर में दक्ष का जन्म हुआ था ।

इस के बाद सूर्य का पुत्र श्राद्धदेव नाम का मनु हुआ । विवस्वान (सूर्य) का पुत्र होने के कारण इसका नाम वैवस्वत है, सूय पुत्र मनु का इतिहास इस प्रकार है । प्रजापति दक्ष की पुत्री अदिति से सूर्य और सूर्य की स्त्री संज्ञा से श्राद्धदेव हुए थे । इस प्रकार मनु से दक्ष ४ पीढ़ी पहिले के हैं । और इनके यज्ञ का समय आयुर्वेद की काश्यप संहिता में सत्ययुग और त्रेता की सन्धि कहा है

† स्वायंभुवमनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र थे । उत्तानपाद के ध्रुव और प्रियव्रत के उत्तम थे ।

§ चाक्षुषमनु भी उत्तानपाद के ही वंश में हुआ है । इसके पिता का नाम रिपु था ।

"कृत त्रेतान्तरत्वेन प्रादुर्भूता यथा नृणाम्। पृ० १९०

और चरक संहिता में स्पष्ट ही त्रेतायुग कहा है॥

"द्वितीयेहि युगे सर्वम क्रोधव्रतमास्थितम्" (च०चि० ३)

छोड़िए दक्ष यज्ञ कब हुआ था, हरिवन्श ने स्पष्ट ही समुद्र समुद्रमन्थन का समय त्रेतायुग कहा है॥

"त्रेतायां संप्रवृत्तायां मन्योन्यमनु जल्पिरे।

समाः सहस्रं मथितं जलमौषधिभिः सह। (हरिवंश ३।३२।)

समुद्र मंथन में कितना समय लगा

समुद्र मन्थन कार्य में कितना समय लगा, इस सम्बन्ध में हरिवंश और बाल्मीक रामायण का कथन है कि यह समुद्र मंथन का कार्य निरन्तर एक सहस्र वर्ष तक चलता रहा था।

"समा सहस्रं मथितं जल मौषधिभिः सह। हरि० ३।३२

"अथ वर्ष सहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान्।

(बाल्मीकि बाल कां० ४५। ३१)

मैं भक्त जनों की बात तो नहीं कहता किन्तु गम्भीर विचार करने पर एक सहस्र वर्ष असम्भव है। किन्तु सत्य यह है कि हम अर्थ करने की शैली पर विचार ही नही करते।

हमें जानना चहिये कि एक शब्द के अनेक अर्थ होते है। वर्ष का अर्थ बारह मास होता है यह सत्य है किन्तु वर्ष का अर्थ एक दिन भी होता है।

"अहर्वै संवत्सरः" इति श्रुतेः । और "अहो रात्रे वै संवत्सरः"

(शतपथ कां० ३ अ० २ ब्रा० मं० ४)

उपरोक्त प्रमाणों के अनुसार एक सहस्त्र वर्ष के स्थान पर एक हजार दिन मान लेने पर २ वर्ष ६ मास और १० दिन होते हैं अथवा जिस प्रकार वर्ष का अर्थ दिन होता है उसी प्रकार शत और सहस्त्र का अर्थ बहुत होता है ।

"शतं सहस्त्रं बहु इति द्वादश बहु नामानि" ।

(निरुक्त अ० ३)

उक्त प्रमाण के अनुसार सहस्त्र का अर्थ बहुत मान लेने पर सहस्त्र वर्ष का अर्थ बहुत वर्षों तक समुद्र मन्थन चलता रहा यह अर्थ होगा ।

और वर्ष का अर्थ दिन तथा सहस्त्र का अर्थ बहुत मान लेने पर सहस्त्र वर्ष का अर्थ होगा बहुत दिनों तक समुद्र मन्थन का कार्य चला था इस प्रकार सहस्त्र वर्ष के तीन अर्थ होते हैं ॥

मेरु पर्वत

समुद्र मन्थन का विचार या परामर्श देवों ने मेरु पर्वत पर किया था ॥ मेरु क्या है, कहां है आदि बातों पर परिशिष्ट में लिखेंगे ॥

❀ प्रथम अध्याय समाप्त ❀

अथ द्वितीय अध्याय प्रारम्भ

द्वितीय धन्वन्तरि

—०-०—

समुद्र के समीपवर्ती भू भाग की खोज के समय मिलने वाले धनवन्तरि जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं उनका वर्णन प्रथम अध्याय में होचुका है। अब हम भारत में होने वाले अन्य सभी धन्वन्तरियों पर विचार करेंगे।

सूर्य के शिष्य धन्वन्तरि

एक धन्वन्तरि का उल्लेख ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है॥ इस में कहा है कि ब्रह्मा ने चारों वेदों का अध्ययन करके उसमें से आयुर्वेद भाग को पृथक किया और उस आयुर्वेद को भास्कर (सूर्य) को पढ़ाया॥ सूर्य ने उसमें से भी कुछ सार भाग लेकर अपनी स्वतन्त्र संहिता का निर्माण किया। अपनी संहिता को सूर्य ने धन्वन्तरि आदि सोलह शिष्यों को पढ़ाया, उनके नाम ये हैं- धन्वन्तरि दिवोदास, काशी का राजा, अश्विनीकुमार, नकुल सहदेव सूर्यपुत्र यम, च्यवन जनक, बुध, जाबाल, जाजलि, पैल करथ और अगस्त्य। सूर्य से पढ़ने के बाद उक्त धन्वन्तरि आदि शिष्यों ने भी अपनी अपनी स्वतन्त्र संहिताओं का निर्माण किया॥ उक्त सभी वेद तथा वेदाङ्गों के ज्ञाता थे॥ धन्वन्तरि ने चिकित्सा तत्व विज्ञान, दिवोदास ने चिकित्सादर्पण काशीराज ने चिकित्सा कौमुदी अश्विनी कुमारों ने चिकित्सा सारतन्त्र और भ्रमघ्नतन्त्र, नकुल ने

वैद्यक सर्वस्व बन्त्र, सहदेव ने व्याधि सिन्धु विमर्दन, यमराज ने ज्ञानार्णव महातन्त्र, च्यवन ने जीवदान तन्त्र, जनक ने वैद्य सन्देह भञ्जन, बुध ने सर्वसार, जावाल ने तन्त्रसार, जाजलि मुनि ने वेदांगसार, पैल ने निदान, करथ ऋषि ने सर्वधर और अगस्त्य ऋषि ने द्वैध निर्णय तन्त्र का निर्माण किया था ॥

मूल पाठ

ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः ।
विचिन्त्यते वामर्थ चैवायुर्वेदं चकार सः । ९
कृत्वातु पंचमं वेदं भास्कराय ददौविभुः ।
स्वतन्त्र संहिता तस्माद् भास्करश्च चकार सः । १०
भास्करश्च स्व शिष्येभ्यः आयुर्वेदं स्व सहिताम् ।
प्रददौ पाठयामास तेचक्रुः संहितांस्ततः । ११
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत् कृतानि च ।
धन्वन्तरि दिवोदासः काशिराजोऽश्विनी सुतौ । १२
नकुलः सहदेवार्किश्च्यवनो जनको बुधः ।
जावाला जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च ।
एते वेदांग वेदज्ञाः षोडश व्याधिनाशकाः । १३
चिकित्सातत्व विज्ञानं नाम तन्त्रं मनोहरम् ।
धनवन्तरिश्च भगवान चकार प्रथमे सति ॥
चिकित्सा दर्पणं नाम दिवोदासश्चकार सः ।
चिकित्सा कौमुदीं दिव्यां काशिराजश्चकार सः । १६

चिकित्सासार तंत्रं च भ्रमघ्नं चाश्विनी सुतौ ।
तंत्रं वैद्यक सर्वस्वं नकुलश्च चकार सः ।
चकार सहदेवश्च व्याधि सिन्धु विमर्दनम् । १७
ज्ञानार्णवं महातंत्रं यमराजश्चकारसः ।
च्यवनो जीवदानं च चकार भगवानृषिः । १८
चकार जनको योगी वैद्य सन्देह भञ्जनम् ।
सर्व सारं चन्द्र सुतो जावाल स्तंत्र सारकम् । १९
वेदांग सार तन्त्रंच चकार जाजलिर्मुनिः ।
पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्व धरं परम् । २०
द्वैधनिर्णय तन्त्रं च चकार कुम्भ सम्भवः ।
चिकित्सा शास्त्र बीजानि तन्त्राण्येतानि शोडष ।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण ब्रह्म० खण्ड अ० १६)

उपरोक्त १६ नामों में धन्वन्तरि दिवोदास और काशीराज तीनों नाम भिन्न भिन्न हैं, ये विचारणीय हैं ॥ उक्त नामों के साथ में बुध का भी नाम है ॥

यह बुध अर्थ शास्त्र का तथा हस्ति शास्त्र का प्रवर्तक था,

'सर्वार्थ शास्त्र विद्धीमान् हस्ति शास्त्र प्रवर्तकः ।

(मत्स्य पुराण)

समय—क्योंकि उक्त धन्वन्तरि का साथी अथवा सहाध्यायी सोम पुत्र बुध है और बुध का जन्म आद्य त्रेतायुग का है अतः इनका समय भी हमें त्रेता ही समझना चाहिये ।

तीसरे धन्वन्तरि

एक धन्वन्तरि का उल्लेख श्री विक्रमादित्य की राजसभा में रहने वालों में मिलता है, जोकि नवरत्न नाम से प्रसिद्ध थे। उनके नाम ये हैं—

"धन्वन्तरि क्षपणकाऽमरसिंह शंकु वेताल भट्ट घट-खर्पर कालिदासाः। ख्यातो वराह मिहिरो नृपतेःसभायां रत्नानि वैं वररुचिर्नव विक्रमस्य। (भोज प्रबन्ध)

धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेतालभट्ट खर्पर, कालिदास वररुचि और वाराह मिहिर ये महापुरुष राजा विक्रमादित्य की सभा के रत्न कहाते थे। अतः इनका समय दोहजार वर्ष पूर्व का है। किन्तु उपरोक्त धन्वन्तरि वैद्य भी थे या नहीं इस का हमको ज्ञान नहीं है। इनके साथी एक वराह मिहिर थे ये बराह मिहिर उन वराह मिहिर से भिन्न थे। जोकि ज्योतिष शास्त्र के आचार्य थे और बृहत्संहिता मयूर चित्रकः तथा वृहज्जातक आदि ज्योतिष ग्रन्थों का जिन्होंने निर्माण किया था। इनका जन्म ५०५ ई० में हुआ था।

चौथे धन्वन्तरि

एक धन्वन्तरि चन्द्रवंशी काशी के राजा हुए हैं। इनका उल्लेख श्रीमद्भागवत हरिवंश तथा ब्रह्माण्ड पुराण आदि में किया है। इनको भी विष्णु का अवतार माना है। इनको आणिमा

महिमा आदि आठों प्रकार की सिद्धियां प्राप्त थीं† ।

"अणिमादि युतां सिद्धिं गतास्तत्र भविष्यति" ।

[ब्रह्माण्ड पु० ३ । ६६ । १६ हरिवंश १ । २६ । १८]

ये धन्वन्तरि विष्णु के अवतार यज्ञ भाग के अधिकारी तथा आयुर्वेद के प्रवर्तक थे ।

" यज्ञ भुग्भाग् वासुदेवांशः स्मृतमात्रार्ति नाशनः" ।

[भागवत ६ । १७ । ५]

उपरोक्त काशीराज धन्वन्तरि की वंशावली हरिवंश अ० २६ प्राचीनकाल में ब्रह्मा नाम के एक महापुरुष थे, कालान्तर में ब्रह्मा एक पद बनगया था । त्रिविष्टप् [तिब्बत] के अन्तर्गत मेरू पर्वत पर इनका निवास था । मरीचि, अंगिरा और अत्रि आदि अनेक पुत्र थे । अत्रि के चन्द्रमा थे, ये वही चन्द्रमा हैं जिन्होंने महमान की शकल में आई हुई देवगुरु वृहस्पति की स्त्री तारा जो कि इनकी भाभी होती थी को बलात् गृहिणी बनाकर देवों में उथल पुथल पैदा करदी थी‡ । तारा को वापिस न करने पर देवासुर संग्राम बन गया था । चन्द्रमा के साथी शुक्राचार्य के सहित दैत्य दानव थे , और वृहस्पति के देवता । महादेव जी अंगिरा ऋषि के शिष्य थे ।

---

† अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।
प्राप्तिः प्राकाम्य मीशित्व वशित्वं चाष्ट सिद्धयः ।

‡ वृहस्पतेस्स वै भार्या मैश्वर्य मदमोहितः ।
पुरोहितस्यापि गुरोर्भ्रातुरांगिरसस्य वै । स्क० पु० का० ख० १५ । २४।

अतः गुरुभाई वृहस्पति के साथी बनगये थे। अस्तु इन दोनों—चन्द्रमा तथा तारा से बुध का जन्म हुआ था। बुध तथा मनु पुत्री इला से पुरूरवा पुरूरवा और उर्वशी से आयु आयु का विवाह दानव राहु की पुत्री से हुआ था § [राहु प्रहलाद की फूवा का लड़का था] इन दोनों से क्षत्रवृद्ध हुआ, क्षत्रवृद्ध से सुनहोत्र सुनहोत्रका काश, काश का काश्य, काश्य का दीर्घतप, दीर्घतप का धन्व और धन्व के धन्वन्तरि हुए थे।

वक्तव्य—विष्णु पुराण में धन्व के बजाय दीर्घतप का पुत्र लिखा है।

"धन्वन्तरिस्तुदीर्घतपसः पुत्रोऽभवत्" ।

ब्रह्माण्ड पुराण में भी दीर्घतप का ही पुत्र लिखा है। भागवत में दीर्घतम का पुत्र लिखा है।

"धन्वन्तरि दैर्घ्यतम- आयुर्वेद प्रवर्तकः" ।

गरुड़पुराण ने भी दीर्घतम का पुत्र लिखा है। आश्चर्य है स्वयं हरिवंश ने भी अ० ३२ में दीर्घतपा का ही पुत्र लिखा है केवल यहीं पर दीर्घतप और धन्वन्तरि के बीच में धन्व लिख दिया है।

जिस प्रकार भागवत में धन्वन्तरि को अवतार माना है उसी प्रकार हरिवंश ने भी माना है किंतु हरिवंश ने धन्वन्तरि की उत्पत्ति को आलंकारिक एवं उपन्यास की

§ पुरूरव सो ज्येष्ठ पुत्रो यस्त्वायुर्नामा स राहोर्दुहितरमुपयेमे ।

विष्णु पु० ४ । ७ । १

भाषा में वर्णन किया है। अतः आकर्षक एवं रोचक बना दिया है।

हरिवंश ने लिखा है कि काशिराज धन्व ने अब्ज† या विष्णु रूपी धन्वन्तरि का तप किया था। और विष्णु से यह वर मांगा था कि आप मेरे यहां पुत्ररूप में जन्म लें। इसको विष्णु ने स्वीकार करके वर दे दिया था। अतः ये धन्वन्तरि नाम से काशिराज के यहां उत्पन्न हुए थे।

"द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रिः स काशिराट्।
पुत्र कामस्तपस्तेपे धन्वो दीर्घतपास्तथा ॥ २२
अब्जं देवं सुतार्थाय तदाराधितवान्नृपः।
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवोधन्वन्तरिस्तदा ॥
काशिराजो महाराज सर्वरोग प्रणाशनः। २६
आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२७

दूसरे द्वापर में अर्थात् द्वापर के दूसरे भाग में काशिराज धन्व ने पुत्र प्राप्ति के लिए तप किया था वरदान स्वरूप धन्व के सब रोगों के नाश करने वाले धन्वन्तरि उत्पन्न हुए थे। धन्वन्तरि ने ऋषि भरद्वाज से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी। और शिक्षा प्राप्त करने के बाद आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त करके शिष्यों को पढ़ाया था।

† धन्वन्तरि समुद्र के पास मिले थे अतः उनकी उत्पत्ति को जल से मानलिया गया है। इसी कारण अब्ज शब्द का प्रयोग किया है,

आठ भागों के नाम

शल्य, शालाक्य, अगद तन्त्र, बाजीकरण, रसायन तन्त्र, काय चिकित्सा, कौमार भृत्य और भूत विद्या।

वक्तव्य—पुराणों ने लिखा है कि भरद्वाज के शिष्य धन्वन्तरि ने आयुर्वेद के शल्य शालाक्य आदि आठ विभाग किए थे।

सुश्रुत में लिखा है कि आयुर्वेद के ८ विभाग ब्रह्मा ने किये।

"इह खलु आयुर्वेदोनाम यत् उपाङ्गम् अथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशत सहस्र मध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयंभुः।
ततोल्पायुष्ट्वम् अल्पमेधस्त्वंच अवलोक्य नराणां भूयो अष्टधा प्रणीतवान्॥ (सुश्रुत सू० अ० १)

ब्रह्मा ने अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद के एक लाख श्लोक बनाये और इनके एक हजार अध्यायों में रक्खा, किन्तु यह देख कर कि मनुष्य अल्पायु और अल्प बुद्धि के होते हैं। पुनः उन के शल्य शालाक्य आदि आठ विभाग करदिए गए थे॥ किन्तु हारीत संहिता में लिखा है कि आत्रेय ने पांच संहिता बना कर आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त किया।

ऋषि आत्रेय कहते हैं कि—

"शृणु पुत्र महाप्राज्ञ सर्व शास्त्र विशारद।
आयुर्वेद मपारंतं श्लोकानां लक्ष संख्यया॥

कथं तस्य परिज्ञानं कालेनाल्पेन पुत्रक। १०
अल्पायुषोऽल्प वक्तारः स्वल्प शास्त्र विशारदाः।
अल्पाव धारणे शक्ताः कलौ जाता इमे नराः।
चतुर्विंश सहस्रैस्तु मयोक्ता चाद्य संहिता।
तथा द्वादश साहस्री द्वितीया संहिता मता।
तृतीया षट्सहस्रैस्तु चतुर्थी त्रिभिरेव च।
पञ्चमी दिक् पञ्चशतैः प्रोक्ताः पंचात्र संहिताः। (अ०१)

ऋषि आत्रेय ने लोगों की अल्प बुद्धि अल्पायु को सोच कर एक लाख श्लोकों के पांच भाग करदिए थे उन्होंने छोटी छोटी पांच सहिताओं का निर्माण किया था जिनमें पहिली २४ हजार की, दूसरी १२ हजार की तीसरी ६ हजार की, चौथी ३ हजार की और पांचवी १॥ हजार श्लोकों की थी! अष्टाङ्ग सग्रह में लिखा है कि आयुर्वेद के विभाग अग्निवेश आदि ऋषियों ने किए थे।

"आयुर्वेदः श्लोक लक्षेण पूर्वं ब्राह्मस्त्वासी दग्नि वेशादयस्तु।
कृच्छ्रात् ज्ञेय प्राप्तपाराः सुतंत्रास्तस्यैकैकं नैकधाङ्गानि तेनुः।"

(उत्तर तंत्र ५०)

उपसंहार—ब्रह्म वैवर्त पुराण कहता है कि सूर्य ने ब्रह्मा से समस्त आयुर्वेद पढ़कर अपनी स्वतन्त्र संहिता बनाई। हरिवंश और ब्रह्माण्ड पुराण कहते हैं कि काशीराज धन्वन्तरि ने ऋषि भरद्वाज से सर्वाङ्गपूर्ण आयुर्वेद को पढ़कर उसको आठ भागों में विभक्त किया॥ सुश्रुत कहते हैं कि स्वयं ब्रह्मा ने ही एक लक्ष-

श्लोकों को शल्य, शालाक्य आदि आठ भागों में विभक्त कर दिया था। हारीत संहिता कहती है कि ऋषि आत्रेय ने एक लक्ष श्लोकों को पांच संहिताएं बनाकर आयुर्वेद के आठ भाग किये थे। वाग्भट अपने अष्टाङ्ग संग्रह में लिखते हैं कि आयुर्वेद के विभाग अग्निवेश आदि ऋषियों ने किए थे। इस प्रकार पांच मत हैं। सही इसमें शंका तथा आश्चर्य की बात नहीं आयुर्वेद सृष्टि के आरम्भ का है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है॥ जब प्राणि हैं तो रोग भी हैं और रोग हैं तो उनका उपाय भी है॥ यह नियम है। जब आयुर्वेद सृष्टि के आरम्भ का है तब उसके विभाग भी आदि काल के हैं॥ इतिहास इसका साक्षी है॥ आवश्यकतानुसार समय समय पर विभागों का संस्कार मात्र हुआ है. अपनी अपनी सुविधा एवं रुचि के अनुसार विषयों का समय समय पर विभाजन करदिया गया है॥

समय—काशीराज धन्वन्तरि के समय के सम्बन्ध में

द्वितीय द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रिः स काशीराट्॥

लिखा है; जिसके अनुसार द्वापर युग का दूसरा भाग होता है॥ किन्तु मेरा निश्चित मत है कि यह पाठ भ्रष्ट होगया है, जबकि धन्वन्तरि से चौथे होनेवाले दिवोदास तथा उसके पुत्र प्रतर्दन का जन्म त्रेता युग में हुआ था तो यह कैसे सम्भव है कि उनके पूर्वज द्वापर में हों॥ पुराणों में इस प्रकार की अशुद्धियां एक नहीं अनेक हैं॥ अतः मेरे विचार से यह पाठ इस प्रकार होना चाहिए॥

"द्वितीये हियुगे प्राप्ते मौन होत्रिः स काशिराट् ।"

इस तरह पाठ होने पर द्वितीय युग अर्थात् त्रेतायुग अर्थ हो जायगा। वंशावली की तथा उसके समय की संगति मिल जायगी। अतः यह सुनिश्चित है कि उपरोक्त काशी राज धन्वन्तरि का समय त्रेता युग ही था।

॥ वक्तव्य समाप्त ॥

हमारी अबतक की खोज में हमको चार धन्वन्तरि मिले हैं। उनका वर्णन होचुका है किन्तु जिन धन्वन्तरि का सम्बन्ध वैद्यों से है, और जो विश्वामित्र के पुत्र सुश्रुत के गुरू थे। वे अभी तक नहीं मिले हैं।

सुश्रुत में स्थान स्थान पर धन्वन्तरि का उल्लेख है ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्यों कि धन्वन्तरि सुश्रुत के गुरू थे। सुश्रुत ने धन्वन्तरि के लिये जिन विशेषणों का प्रयोग किया है उन का लिखना भी आवश्यक है ताकि उनके जानने में सहायता मिले। वे विशेषण इस प्रकार है।

१ – काशी के राजा दिवोदास और धन्वन्तरि एक ही व्यक्ति थे। जब सुश्रुत धन्वन्तरि जी के पास पढ़ने गये थे तव वे और उनके पास बहुत से ऋषि भी बैठे हुए थे❀।

❀ अथ खलु भगवन्तममरवरं ऋषिगणपरिवृतं आश्रमस्थं काशिराज दिवोदासं धन्वन्तरिमोप धेनव, वैतरण औरभ्र पौष्ककलावत करवीर्य गोपुर रक्षित सुश्रुत प्रभृतय ऊचुः। सु सू–१।१।

२—धन्वन्तरि के लिये काशिपति शब्द भी प्रयुक्त हुआ है*।

३—धन्वन्तरि धर्मात्माओं में श्रेष्ठ तथा ऊंचे वक्ता थे‡। धन्वन्तरि उच्चकोटि के विद्वान् तथा सभी शास्त्रों के ज्ञाता थे§।

४—दिवोदास अष्टांग आयुर्वेद के पूर्ण ज्ञाता थे†। इनके अतिरिक्त काशि पति मुनि, राजर्षि महा तपस्वी नृपशार्दूल भूमिपाल और शास्त्रार्थ तत्वज्ञ आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। तथा च सुश्रुत के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि वस्तुतः नाम दिवोदास और धन्वतरि उपाधि थी (इसके प्रमाण आगे देंगे)। आदि आदि योग्यताएँ जिस दिवोदास में हों हमें वहीं पर ठहरना है। अतः अब हम दिवोदास नाम के व्यक्तियों पर भी विचार करेंगे। एक प्रसिद्ध दिवोदास पुरुवंश में हुआ है जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत के अनुसार इस प्रकार है, ब्रह्मा के ऋषि अत्रि अत्रि का चन्द्रमा चन्द्रमा का बुध बुध का पुरूरवा। पुरूरवा की राजधानी प्रयाग अथवा प्रतिष्ठान पुर थी¶ पुरूरवा के आयु आयु के नहुष

---

* पठेद्भिः काशिपति प्रकाशितम्। सु० सू० ३।१।

‡ धन्वन्तरि धर्म भृतां वरिष्ठो वाग्विशारदः॥ सु० चि० २।१॥

§ धन्वन्तरिं महाप्राज्ञं सर्व शास्त्र विशारदम्॥ सु० कल्प० ४।१॥

† अष्टाङ्गायुर्वेद विदं दिवोदासं महोदधिम्॥ सु० उत्त० ६६।५

¶ देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टु ते।
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवी पतिः॥ हरिवंश।
उत्तरे यामुनीतीरे प्रतिष्ठाने महायशाः॥ ब्रह्माण्ड पु० ६६॥

के ययाति ययाति की एक स्त्री वृषपर्वा दानव की पुत्री शर्मिष्ठा थी।

इन दोनों से राजा पुरूरवा का जन्म हुआ। इसी पुरू वंश में प्रसिद्ध राजा हस्ति हुआ। हस्ति नें अपने नाम पर हस्तिनापुर नगर (मेरठ) बसाया था। हस्ति का पुत्र अजमीढ़ अजमीढ़ का नील नील का शान्ति शान्ति का सुशान्ति सुशान्ति का पुरुज पुरुज का अर्क अर्क का भर्म्याश्व भर्म्याश्व के—मुद्गल यवीनर वृहदिषु संजय और कांपिल्य पांच पुत्र हुए थे। मुद्गल का पुत्र दिवोदास और कन्या अहल्या थी। यही अहल्या ऋषि गौतम की पत्नी थी इन्द्र ने इसका सतीत्व नष्ट करके इसका जीवन दुःखमय बना दिया था। कुछ दिन बाद श्री रामचन्द्र जी ने अहल्या का उद्धार किया था।

वक्तव्य—विष्णु पुराण ने भर्म्याश्व का नाम हर्यश्व और मत्स्य पुराण ने भद्राश्व लिखा है। इसी प्रकार भागवत ने दिवोदास को मुद्गल का पुत्र लिखा है किन्तु अन्य पुराणों ने मुद्गल का पौत्र लिखा है। विष्णु पुराण तथा हरिवंश ने दिवोदास के पिता का नाम हर्यश्व मत्स्य पुराण ने विंध्याश्व और ब्रह्माण्ड ने वध्र्याश्व लिखा है। जैमिनीय ब्राह्मण ने भी—

"दिवोदासो वै वाध्र्यश्विः"

लिखकर ब्रह्माण्ड का समर्थन किया है।

प्राचीनकाल में पाँचाल देश अविभक्त था बाद में इसके विभाग होगये थे वंश वृद्धि होने पर विभागों का होना स्वाभाविक है। इसी आधार पर भर्म्याश्व ने मुद्गल आदि पांच पुत्रों के होने

पर कहा था कि ये पाँचों पुत्र हमारे देश की रक्षा के लिये पर्याप्त हैं और इन्हीं पाँचों के कारण इस देश का नाम पाँचाल हुआ था§। अन्यथा इससे पूर्व इस देश का नाम क्रैव्य था और यहां के क्षत्रिय क्रिवय कहलाते थे।

"तेन हैतेन क्रैव्यई जे पांचालो राजा क्रिवय इति वै पुरा पांचालानाचक्षते। (शतपथ १३। ५। ७

पुराणों में दिवोदास तथा अहल्या का जन्म मेनका नाम की अप्सरा से लिखा है। और साथ ही दिवोदास को राजर्षि भी कहा है † यह राजा होता हुआ भी ऋषि होगया था। भृगुवंश के गोत्र प्रवर आदि के प्रसङ्ग में भी इसको ऋषि ही स्वीकार किया है।

भृगुश्चैवाथ वध्य्रश्वो दिवोदासस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्याः ऋषयः परिकीर्तिताः। मत्स्यपु० १९५

और भृगुकुल के अथवा भृगु के शिष्य जो मंत्रकर्ता तथा मंत्रवादी थे उनमें भी दिवोदास की गणना है।

"एते मन्त्रकृताः सर्वे कृत्स्न शस्तान्निबोधत।
भृगुः काव्य प्रचेता च दधीचो आप्नवानपि।
और्वोथ जमदग्निश्च विदः सारस्वतुस्तथा॥
आर्ष्टिषेणश्च च्यवनः बीतहव्यः सवेधसः।

§ विषयाणामलमिमे इति पांचाल संज्ञिताः भागवत ९॥ २१॥ ३२
† हर्यश्वान् मिथुनं जज्ञे मेनकाया मिति श्रुतेः।
दिवोदासश्च राजर्षि रहल्या च यशस्विना। हरिवंश ३२। ७४
विन्ध्याश्वान् मिथुनं जज्ञे मेनकाया मिति श्रुतिः।
मत्स्य पुराण ५०। ७।

वैन्यः पृथुर्दिवोदासो वाध्यूश्वो गृत्सशौनकौ ।
एकोन विंशति ह्येते भृगवो मन्त्रवादिनः ।

(मत्स्य पुराण १४५)

भृगु, काव्य, (शुक्राचार्य) प्रचेता, दधीच आप्नवान, और्व, जमदग्नि, विद, सारस्वत, आर्ष्टिषेण, च्यवन, वीतहव्य, सुवेधस, वैन्य, पृथु, दिवोदास वाध्यूश्व, गृत्स और शौनक थे सब भार्गव मन्त्रकर्ता तथा मन्त्रवादी ऋषि हैं। मत्स्य पुराण ने स्पष्ट ही दिवोदास को क्षत्रोपेत भार्गव कहा है—

" एते वंश्याः यतोपक्षाः क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः " ।

(अ० ५० श्लोक १३)

पांचाल राज प्रवाहण जैवलि

दिवोदास के अतिरिक्त एक नाम प्रवाहण जैवलि का भी छान्दोग्य उपनिषद् में आया है। इनके पास ऋषि आरुणि का पुत्र श्वेत केतु गया था§ । तब प्रवाहण जैवलि ने इनसे पूछा था कि आपको आपके पिता ने क्या पढ़ाया है इस पर श्वेत केतु ने कहा था कि मैं भली प्रकार शिक्षित हूँ। इसके बाद पांचालराज प्रवाहण ने पांच प्रश्न किये थे जिन में से श्वेतकेतु एक का भी उत्तर नहीं दे सका था। इससे सिद्ध है कि पांचाल नरेश न केवल शाशक होते थे अपितु विद्वान् तपस्वी एवं अध्यात्म वादी भी होते थे।

पांचाल राज के दो भाग थे उत्तर और दक्षिण। उत्तर

§ श्वेतकेतु हारुणेयः पांचालानां समिति मेयाय । छा० उप० ख० ३

पांचाल† की राजधानी अहिच्छत्रापुरी। (रामनगर-आँवला जिला बरेली) इससे ३० मील दक्षिण को दक्षिण पांचाल की राजधानी थी कांमिल्यपुर (कंपिला ग्राम कायमगज तहसील जिला फरुक्खाबाद) प्राचीन युग में कांपिल्य की ख्याति बहुत ऊची थी इसका उल्लेख अनेक ग्रंथों में मिलता है, रामायण काल में यहां के राजा का नाम ब्रह्मदत्त और कांपिल्य का नाम कांपिल्या लिखा है।

स राजा ब्रह्मदत्तस्तु पुरीमध्यवसत्तदा।
कांपिल्यां परया लक्ष्म्या देवराजो यथा दिवम्। उत्तरकां० ३।

अग्नि वेश के गुरू पुनर्वसु भी एक बार यहाँ आये थे उन्हों ने यहीं पर अग्नि वेश को संक्रामक रोगों का उपदेश दिया था जिस का वर्णन चरकसंहिता के विमानस्थान में मिलता है। कुछ काल बाद दिवोदास नवीं की सन्तति पर राजा द्रुपद हुए थे। द्रुपद के समय में गुरु द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद को परास्त करके उत्तर पांचाल का भाग अपने अधिकार में ले लिया था। और दक्षिण पाँचाल का भाग जिसकी राजधानी कांपिल्य थी, द्रुपद को देदिया था❀। राजा द्रुपद के धृष्टद्युम्न आदि अनेक पुत्र थे। तथा द्रौपदी

† वर्तमान रुहेलखण्ड ही प्राचीन उत्तर पांचाल था। जिसमें रामपुर रियासत शाहजहाँपुर पीलीभीत, हरदोई, रायबरेली बरेली, आदि जिले हैं।

❀ अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत।
सोऽध्या वसद्दीन मनाः कांपिल्यं च पुरोत्तमम्।
(म० भा० आ० प० १४०)

और शिखंडी नाम की दो कन्याएँ थीं। द्रौपदी पांडव अर्जुन को ब्याही गई। और शिखंडी को यक्ष जाति के स्थूणश्रवा नाम के वैद्य ने कन्या से पुत्र बना दिया था‡।

दिवोदास का समय—दिवोदास की भगिनी अहल्या गौतम की स्त्री थी श्री रामचन्द्र जी ने इसका उद्धार किया था अत: दिवोदास और श्री राम लक्ष्मण समकालीन थे।

पांचाल के संबन्ध में सरस्वती पत्रि का एक लेख छपा था उसको भगवतदत्त B. A. ने अपनी भारतवर्ष का इतिहास नामक पुस्तक में लिखा है। हम ज्यों का त्यों यहाँ पर देरहे हैं।

भौगोलिक स्थिति—पांचाल देश का अत्यन्त सुन्दर वर्णन श्रीयुत उमेशचन्द्र देव जी ने किया है। वह वर्णन सरस्वती पत्रिका जनवरी सन् १९३८ में मुद्रित हुआ था उसी के कतिपय अंश आगे दिये जाते हैं। "फर्रुक्खाबाद से छोटी लाइन के द्वारा मथुरा की ओर चलने पर कायमगज और रुदायन के नीचे में रेल से उत्तर की ओर एक झील दिखाई देती है।..........इसे 'सर दीपक ताल' कहते हैं। महाभारत तथा हरिवंश पुराण में इस तालाब का नाम 'शर द्वीप तीर्थ' लिखा है।..........शर द्वीप से पश्चिम डेढ़ मील की दूरी पर 'रुदायन' गांव है। महाभारत में इसका नाम

---

‡ शिखण्डी द्रुपदाज्जज्ञे कन्या पुत्रत्वमागता।
यां यक्षः पुरुषं चक्रे स्थूणः प्रियचिकीर्षया॥
(म० भा० आं० प० ६३। १६४)

'रुद्रायम-तीर्थ है। रुदायन से दो मील पश्चिम भारागैन नाम का एक बड़ा गांव है। महाभारत में इस का नाम भार्गवायन है। पाँडव इसी ग्राम में एक कुम्हार के घर ठहरे थे। भार्गव का अर्थ कुम्हार है। ·········· पास ही धौम्य का·······धौमपुरा·······है। धौमपुरा से आगे जाजपुरा·······उस से आगे जिजवटा ग्राम है। इस का शुद्ध नाम 'यज्ञवाट' था। यही राजा द्रौपद का कोट था।"

राजधानी—पाँचाल की राजधानी कांपिल्य थी। इसका नाम अब कंपिल है। "कंपिल अब प्रायः खडर है। जिसे द्रुपद का कोट कहते हैं। वह एक ऊंचा खेरा है, केवल एक गुम्बद शेष रह गया है।"

उत्तर पाँचाल- "गङ्गा के उत्तर प्रदेश को उत्तर पंचाल कहते थे। इसकी राजधानी कपिल से ३५ मील उत्तर अहिच्छत्र थी। इसे आजकल 'अहिच्छता' कहते हैं। ···पास ही एक ग्राम सोन-सूबा है। जो स्थूण श्रवायक्ष की नगरी थी। इस यक्ष ने राजकन्या शिखण्डिनी को पुंस्त्व प्रदान किया था। यहाँ से कुछ पूर्व पलावन गांव है। यह प्रसिद्ध उत्पलावन तीर्थ था। कंपिला से साठ मील पश्चिम नरदई के पुल के समीप एक घण्टा रक्खा है जिसका भार अस्सी मन के लगभग होगा। इसे भीमसेन का घण्टा कहते हैं। इसी प्रकार मदार दर्वाजे के पास अष्टधातु निर्मित गदा के दो टुकड़े एक छबूतरे में गड़े हुए हैं। इनको भीमसेन की गदा कहते हैं। ···सैंकड़ों वर्ष से पड़े रहने पर भी इन पर जङ्ग का प्रभाव नहीं हुआ।' (भारतवर्ष का इतिहास पृ० १७५)

सूर्यवंशी दिवोदास—स्कन्द पुराण में एक दिवोदास नाम के काशी के राजा का वर्णन मिलता है। यह सूर्यवंशी था ‡ और इस का दूसरा नाम रिपुञ्जय था इस ने भी काशीदेश की वाराणसी पुरी में राज्य किया था। इसके राजा बनने की कथा इस प्रकार है। एक समय की बात है काशीदेश में वर्षा न होने के कारण प्रजा में बेचेनी फैली। मनुष्यों केलिये अन्न तथा पशुओं के लिये चारा मिलना असंभव होगया अन्न के न मिलने पर लोग मांस खाने लगे बाद में मांस भी मिलना असंभव होगया आखिर मांस भी कहाँ तक मिलता इस की भी तो सीमा है। अतः प्रजा भूखों मरने लगी हाहाकार मच गया। ऐसी अवस्था देखकर प्रजापति ब्रह्माजी बड़े व्याकुल हुए। और रिपुञ्जय के पास जो कि काशीपुरी में उस समय तप कर रहे थे पहुंचे। और कहा कि यदि आप काशी जनपद का राज्य करना स्वीकार करलें तो वर्षा होजायगी। प्रजा में फिर से सुख शान्ति होजायगी। और यदि आप काशी जनपद राज्य भार संभाल लें तो नाग जाति के राजा वासुकि अपनी सुशीला अनङ्ग मोहिनी नाम की कन्या से विवाह भी कर देंगे। §

---

‡ मनो रन्वयजो वीरः क्षात्रो धर्म इवोदितः। स्क० पु० का० ख० ३६।२४

§ प्राचीनयुग में तक्षक अनन्त शेषकालीय बामन शंख ऐवरावत तथा वासुकी आदि भेद से एक नाग जाति थी इनके आर्यों में वैवाहिक सम्बन्ध भी होते रहे हैं। किन्तु अन्तर यह रहा है कि इन की कन्याओं को लेलिया करते थे अपनी देते नहीं थे। जैसे-सूर्य

नागकन्या नागराजः पत्न्यर्थं ते प्रदास्यति ।
अनंग मोहिनी नाम्ना वासुकिः शीलभूषणम् ॥

इस पर दिवोदास ने ब्रह्मा जी से कहा कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए तयार हूँ परन्तु मेरी यह शर्त है कि काशी में रहने वाले नाग नागलोक (पाताल) में, देवता स्वर्गलोक में और महादेव जो कैलाश या मन्दर पर्वत पर चले जायें तो मैं राज्य का भार ले सकता हूँ अन्यथा नहीं । †

इस पर ब्रह्माजी ने रिपुञ्जय की शर्त को स्वीकार करके देवता

वशी पुरुकुत्स की स्त्री नर्मदा नागवंश की थी प्रसिद्ध चन्द्रवंशी अग्नि नार की स्त्री 'ज्वलना' तक्षक कन्या थी । पांडव अर्जुन की स्त्री 'उलूपी' हरिद्वार निवासी कौरव्य नाग की पुत्री थी श्री रामचन्द्र के पुत्र कुश इनकी स्त्री कुमुद्वती नाग कन्या थी । ऋषि जरुत्कारू की स्त्री वासुकी नाग की भगिनी थी अस्तु वासु की दक्षिण भारत के रहने वाले थे । इन की राजधानी का नाम भोगवती था । भोगवती में रावण ने जाकर वासुकि को परास्त किया था ।

† तदा दिविषदो देवा दिवि तिष्ठन्तु मा भुवि ।
नाग लोके तथा नागास्ततो राज्यं करोम्यहम् ।
देवेषु दिवितिष्ठत्सु मर्यातिर्ष्ठात भूतले ।
असपत्न्येन राज्येन प्रजा सौख्यम वाप्स्यति । स्क० पु० का० ख०
३९ । ४६-४७ ।

आदि सभी को अपने अपने देशों को भेज दिया। इसके बाद दिवोदास वाराणसी नगरी को राजधानी बनाकर बड़ी योग्यता के साथ राज्य करने लगे।

दिवोदास के राज्य का वर्णन स्कन्द पुराण ने इस प्रकार किया है।

"एक पत्नीव्रताः सर्वे पुमांसस्तस्य मंडले।
नारीषु काचि न्नैवासी दपतिव्रत धर्मिणी ४४।
अनधीतो न विप्रोभूदशूरो नैव वाहुजः।
वैश्योन भिज्ञो नैवासी दर्थोपार्जन कर्मसु। ४५।
अनपत्या न तद्राष्ट्रे धन हीनापि कोपिन।"

अर्थात दिवोदास के राज्य में सभी पुरुष पत्नी व्रत एवं स्त्रियां सभी पतिव्रता थीं। ब्राह्मण सभी वेदों के ज्ञाता, क्षत्रियगण सभी शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता तथा वैश्य सभी धनोपार्जन में कुशल थे। इन के राज्य में सन्तान रहित तथा धनहीन (दरिद्र) पुरुष देखने को नहीं मिलते थे।

ईर्ष्या का जन्म—कुछ दिन बाद जब प्रजा में शान्ति हो गई राज व्यवस्था सुचारू रूप से चलने लगी तब देवों को तथा महादेव जी को दुःख हुआ और दिवोदास के प्रति ईर्ष्या होने लगी। दोनों ही फिर से काशी में बसने की चेष्टा करने लगे। दिवोदास को राज्य से हटाने का प्रयत्न करने लगे। देवों ने अपने गुरू बृहस्पति को बुलाकर दिवोदास को काशी से हटाने के लिये परामर्श किया।

बृहस्पति ने देवों से कहा कि संधि विग्रह और द्वैध शासन

आदि जो राज्य करने के गुण हैं उनका जितना अच्छा ज्ञाता दिवोदास हैं। उतना हममें कोई नहीं हैं। फिर भेद या प्रजा विद्रोह की नीति से ही दिवोदास को राज्य च्युत किया जा सकता है।

यह ठीक है कि दिवोदास ने काशी से देवों को निकाल दिया है। फिर भी हमारे पक्षपाती वहां पर अनेक मनुष्य हैं जो कि बाहर और भीतर रह कर हमारा गुप्त चर का कार्य कर रहे हैं। ‖ यह परामर्श बृहस्पति का देवों को पसन्द आया और इसके अनुसार कार्य करने का विचार किया।

देवों की इस मनोवृत्ति पर स्कन्द पुराण का लेखक कवि कहता है।

'यद्यप्य सौ धरा धीशो व्याधिनो दुर्दुर्धराध्वरैः।
तानध्वर भुजो त्यन्तं तथापि सुहृदो नते।
स्वभाव एवं द्युसदां परोत्कर्षासहिष्णुता।
वलि वाण दधीच्याद्यै रपराद्धं किमत्रतैः।"

यद्यपि दिवोदास यज्ञों द्वारा देवों को खिलाया पिलाया करता था। तो भी देवता उसके मित्र नहीं थे। क्यों कि दूसरों की उन्नति को सहन करना देवों का स्वभाव ही नहीं है। यदि ऐसा होता तो

‖ तेन यद्यपि भूभर्त्रा भूमेर्देवा विवासिताः।
तथापि भूरिश स्तत्र संत्य स्मत् पक्षपातिनः। ६६।
धन्तर्वहि श्चरा नित्यं सर्व विश्रम्भ भूमयः। स्क० पु० का० ख० ४३

बलि बाण और दधिचि ऋषि ने ही उनका क्या बिगाड़ा था। फिर भी उनको नष्ट कर ही दिया था।

वक्तव्य—पाठक गण यहां पर दैत्य राज बलि की चर्चा आई है जी चाहता है इस पर भी कुछ प्रकाश डाला जाय !

ब्रह्म पुराण में एक कथा के प्रसंग में स्वयं देवों के पितामह ब्रह्मा जी ने देवों की मनोवृत्ति का परिचय दिया है और बलि के शासन की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

ब्रह्मा जी ने कहा है दैत्यराज बलि तीनों लोकों का (स्वर्ग मर्त्य लोक और दैत्य दानव धर्म पूर्वक राज्य करता था उसके राज्य में कोई दुर्जन नही था, आदि व्याधि नहीं थी। उसके राज्य में वर्षा समय पर होती थी। वह स्वय गुरु भक्त, धर्मात्मा, सत्य-वादी त्यागी तथा क्षमाशील एवं महापराक्रमी था। उसकी उन्नति को देवता सहन न कर सके और मत्सरता से प्रेरित होकर बलि का राज्य च्युत करने के लिये विष्णु की शरण में गये थे‡

---

‡ बलि र्नाममहा दैत्यो देवारि रपराजितः।

धर्मेण यशसा चैव प्रजा संरक्षणेन च। २।

गुरुभक्त्या च सत्येन वीर्येण बलेन च।

त्यागेन क्षमया चैवत्रै लोक्ये नोपमीयते। ३।

तस्य र्द्धि मुन्नतां दृष्ट्वा देवा श्चिन्ता परायणाः।

ततः संमंत्रयामासुः कृत्वामात्सर्यमग्रतः।

तद्यशोग्नि प्रदीप्तांगा विष्णुं जग्मुः सु विह्वलाः। अ० ४। ८।

महादेव जी—इधर देवों की यह दशा है उधर मन्दर पर्वत पर महादेव जी भी बेचैन हैं महादेव जी पार्वती से कहते हैं कि इतना मुझे दक्ष पुत्री सती के मरने पर विरह अग्नि ने नहीं जलाया था। जितना कि काशी की विरह अग्नि जला रही है। ‡

इसके उत्तर में पार्वती कहती हैं—

"किमत्रनो सन्ति पुरः सहस्रशः पदे पदे सर्व समृद्ध भूमयः।
परं न काशी सदृशी दृशोः पदं क्वचिद्गता मे भवताशयेशिव।३२
त्रिविष्टपे सन्ति न किं पुरः शतं समस्त कौतूहल जन्मभूमयः।
तूष्णी भवन्तीह च ताः पुरः पुरः पदं पुरारे भवतो भवद्विषः।
न केवलं काशि वियोगजो ज्वरः प्रबाधते त्वांतु तथा यथात्रमाम
उपाय एषोत्र निदाघ शान्तये पुरीतु सा वा मम जन्मभूरथ॥
(स्क० पु० का ख० ४४)

पार्वती कहतीं हैं क्या संसार में बड़े बड़े वैभव पूर्ण और नगर नहीं है, अवश्य है किन्तु काशी जैसी और नहीं है। औरों को जाने दीजिए समस्त कौतुहलों की जन्म भूमि त्रिविष्टप् (तिब्बत) में ही सैंकड़ों नगर हैं किन्तु वे सभी आपके शत्रुओं ने तुच्छ बना दिए हैं। रहा काशी वियोग का दुःख वह न केवल आप को ही

‡ न तथो ज्झित देहया तया ममद चोद्भव या मनोऽदुनोत्।
अविमुक्त वियोग जन्मना परि दूयेत यथा महोष्मणा।
स्क० पु० का ख० ४४।

सताता है बल्कि आप से अधिक मुझ को बैचेन करता है। किन्तु क्या किया जाय इस वियोग जन्य दुख को दूर करने के लिए काशी की प्राप्ति हो अथवा मेरी जन्म भूमि अर्थात हिमालय और तीसरा उपाय नहीं है।

इसके बाद महादेव जी ने और देवों ने अनेक उपाय किये थे जिनमें नास्तिक वाद का प्रचार भी था। अन्त में महादेवजीने ब्रह्मा को भी भेजा था लिखा है कि काशी में ब्रह्माजी ने दिवोदास से दस यज्ञ कराई थीं अन्त में उनको राज्य से हटना पड़ा था।

समय—इस दिवोदास का समय स्कन्द पुराण में ही स्वायंभुव मनु का अन्तर लिखा है।

"षाझ कल्पे पुरावृत्ते मनोः स्वायं भुवेन्तरे।"

किन्तु मुझे इसमें सन्देह है इसलिए कि महादेव जीने दक्ष पुत्री सती का उदाहरण दिया है। और दक्ष पुत्री सती की मृत्यु चाक्षुष मनुके अन्तमें हुई है। चाक्षुष मनु की संख्या छठी है और स्वायंभुव की पहली है। अतः मेरा मत है कि यहां पर पाठभ्रष्ट हुआ है। और कोई प्रमाण हमारे पास नहीं हैं अतः इन का समय आज बताना हमारे लिये असंभव ही है।

—०—०—

चौथे दिवोदास

एक दिवोदास का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। महाभारत में लिखा है ऋषि गालव ने विश्वामित्र से शिक्षा पाई। गुरुदक्षिणा में विश्वामित्र ने आठ सौ श्याम कर्ण घोड़े मांगे। इस मांग की पूर्ति करना गालव के लिए कठिन होगया। अकस्मात् ऋषि गालव को गरुड़ मिल गये उन्हों ने सहायता का वचन दिया और गालव को अपने मित्र प्रतिष्ठान (झूंसी) पति चन्द्रवंशी ययाति के के पास लेगये‡। गरुड़ ने ययाति के सामने गालव की माँग को उपस्थित किया किन्तु ययाति के पास श्यामकर्ण घोड़े थे नहीं अतः ययाति ने अपनी माधवी नाम की कन्या देदी और कहा कि इसके बदले के आठ सौ घोड़े आप लेलें और सन्तान मैं लेलूंगा।† ऋषि गालव और गरुड़ माधवी को लेकर चल दिये, इस के बाद गरुड़ अपने घर को चले गये और ऋषि गालव माधवी को लेकर इक्ष्वाकु वंशी राजा हर्यश्व के पास अयोध्यापुरी को गये।*

---

‡ प्रतिष्ठा ने नरपतिं ययातिं प्रत्युपास्थितौ।

उद्योग पर्व ११३। १०)

† अह दौहित्रवान स्याम् वै वर एष मम प्रभो।

(उद्योग पर्व ११४। १४)

* सोगच्छन्मन सेक्ष्वाकु हर्यश्वं राजसत्तमम्।

अयोध्यायां महावीर्यं चतुरङ्ग बलान्वितम्॥

(उद्योग पर्व ११४। १८)

अयोध्या पति राजा ने माधवी से वसुमना नाम का पुत्र उत्पन्न करके शुल्क में दो सौ श्यामकर्ण घोड़े देकर माधवी को वापिस करदिया।

इस के बाद गालव माधवी को लेकर काशीराज दिवोदास के पास गये। ‡ दिवोदास ने भी माधवी से एक पुत्र उत्पन्न किया और दो सौ श्यामकर्ण घोड़े देकर माधवी को वापिस करदिया। इस के बाद माधवी को लेकर गालव चन्द्र वंशी राजा उशीनर के पास गया उशीनर ने भी एक पुत्र उत्पन्न करके दो सौ श्यामकर्ण घोड़े देकर माधवी को विदा कर दिया। †

वक्तव्य—इस उपरोक्त कथानक में ययाति को प्रतिष्ठान (भूंसी) का राजा लिखा है यह सत्य है। ययाति के प्रपितामह पुरूरवा ने इलावर्त ¶ का त्याग करके प्रतिष्ठानपुर में राजधानी बनाई थी*। और यह प्रतिष्ठानपुर की राजधानी पौरव संवरण

---

‡ महावीर्यो महीपालः काशीनामीश्वरः प्रभुः।
दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनिर्नराधिपः॥ उद्योग पर्व ११६॥

† ततोस्य समये जज्ञे पुत्रो बाल रविप्रभः।
शिबिर्नामाभि विख्यातो यः स पार्थिव सत्तमः॥ उद्योग पर्व ११७॥

¶ इलावर्त मितिख्यातं तद्वर्षं विस्तृतायतम्।
यत्र यज्ञो बलेर्वृत्तो बलिर्यत्र ह्संयतः।
देवानां जन्मभूमिर्या त्रिषुलोकेषु विश्रुता॥ मत्स्य पु॰ १३५॥

* उत्तरे यामुनी तीरे प्रतिष्ठाने महायशाः॥ ब्रह्माण्ड पुराण॥

तक रही थी इस के बाद संवरण के पुत्र कुरू ने वहां से–प्रतिष्ठानपुर अथवा प्रयाग से हटा कर कुरूक्षेत्र में स्थापित कर ली थी ¶ किंतु इसी प्रसङ्ग में महाभारत उद्योग पर्व अ० ११४ में ययाति को काशी का राजा लिख दिया है यह सर्वथा असत्य है।

"ययातिः सर्व काशीश इदं वचनम ब्रवीत्"

और यह भी तब जब कि उसी काल में काशी में दिवोदास नामक राजा राज कर रहा था और भी आश्चर्य का विषय है।

उपरोक्त कथानक के अनुसार ययाति दिवोदास सूर्यवंशी हर्यश्व और चन्द्रवंशी उशीनर समकालीन होते हैं।

राजा ययाति के यदु, पुरू, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु नाम के पांच पुत्र थे। अनु के वंश में ययाति से ग्यारहवीं पीढ़ी पर उशीनर हुआ है। तब यह कैसे सभव है कि ययाति की पुत्री से उशीनर की सन्तान हो। अतः यहाँ पर भी पाठ भ्रष्ट हुआ है।

वंशावलियों से ज्ञात होता है कि अयोध्या पति हर्यश्व के समकालीन पंजाब में उशीनर, प्रतिष्ठानपुर में पुरुवंशी अहंयाति और काशी में दिवोदास थे। स्मरण रहे यह पुरु भी राजा ययाति का ही पुत्र था इसी के वंश में बारहवीं पीढ़ी पर अहंयाति हुआ

¶ ऋक्षात्संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात्ततः।
यः प्रयाग मतिक्रम्य कुरुक्षेत्रम कल्पयत् ॥ मत्स्य० पु० ५०।२ ॥

है। अतः ययाति नाम के स्थान पर अहंयाति होना चाहिये। और अहंयाति की स्त्री भानुमति यदुवंशी कृतवीर्य की पुत्री थी। "अहंयातिः खलु कृतवीर्य दुहितर मुपयेमे भानुमतीम्। महाभारत-आ० प० ६५।" दिवोदास के पिता का नाम भीमसेन लिखा है। "भैमसेनिर्नराधिपः"। यह ठीक मालूम होता है। इसका संवाद ऋषि आरुणी से भी हुआ था। 'दिवोदासो भैमसेनिरारुणीमुवाच' (काठक संहिता)

समय—अहंयाति की स्त्री यादव कृतवीर्य की पुत्री थी कृतवीर्य का पुत्र कार्तवीर्य या सहस्त्रवाहु था सहस्त्रवाहु दसवें त्रेता में हुआ है अतः उपरोक्त दिवोदास का समय भी दसवां त्रेतायुग ही हुआ।

द्वितीय अध्याय समाप्त

अथ तृतीय अध्याय प्रारंभ

पाठक गण! अब तक हमने अनेक धन्वन्तरि तथा दिवोदासों का वर्णन किया है किन्तु उन में से एक भी ऐसा नहीं मिला जो काशी का राजा हो, वाराणसी राजधानी हो, दिवोदास और धन्वन्तरि नाम हों, और विश्वामित्र का पुत्र सुश्रुत का गुरू हो। अब हम ऐसे ही दिवोदास का वर्णन करेंगे जिसमें उपरोक्त सभी बात हों।

दिवोदास धन्वन्तरिः—

काशी के राजा चन्द्रवंशी थे यह काश्य अथवा काशय वंश कहाता था। इस वंश में धन्वन्तरि नाम के भी राजा हुए हैं उनका वर्णन हो चुका है। इसी वंश में दिवोदास नाम के राजा भी हुये हैं और वेही धन्वन्तरि नाम से भी प्रसिद्ध हुये हैं। इसका उल्लेख श्रीमद्भागवत विष्णुपुराण, महाभारत, हरिवंश आदि सभी ग्रन्थों में उपलब्ध है अब हमें इन्हीं पर विचार करना है। इनकी वंशावली हरिवंश के अनुसार इस प्रकार है।

ब्रह्मा का अत्रि, अत्रि का चन्द्रमा, चन्द्रमा का बुध, बुध का पुरूरवा, पूरूरवा का आयु*, आयु का क्षत्रवृद्ध, क्षत्रवृद्ध का

* आयु की स्त्री दानव राहु की पुत्री थी। और राहु हिरण्यकशिपु का भांजा था।

शुनहोत्र, शुनहोत्र का काश, काश का काशव, काशव का दीर्घतप दीर्घतप का धन्वन्तरि, धन्वन्तरि का केतुमान, केतुमान का भीमरथ और भीमरथ का दिवोदास हुआ "दिवोदास इति ख्यात: सर्वरक्षो विनाशन:।" (हरिवंश २-३२-२३) अर्थात दिवोदास सर्व प्रकार के राक्षस या जीवाणुओं को नष्ट करने वाले थे। यहाँ पर राक्षस का अर्थ जीवाणु है न कि राक्षस जाति। वेद, आयुर्वेद अर्थशास्त्र पुराण आदि सभी ने रोगोत्पादक जीवाणुओं को राक्षस नाम से लिखा है। और वेद ने तो स्पष्ट ही घोषणा की है " यत्रौषधी: समिग्मत राजान: समिताविव। विप्र: स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीव चातन:।" (ऋक १०।१८५।६, यजु: १२।८०) जिस के पास उत्तम औषधियों का भण्डार है और इन औषधियों से राक्षस तथा राक्षस जन्य रोगों को नष्ट करने की क्षमता रखता है उसे वैद्य कहते हैं दिवोदास इस के ज्ञाता थे।

दिवोदास का जीवन अधिकतर आपत्तिग्रस्त रहा है किंतु साहस एवं बुद्धि बल से आपत्तियों को पार करते रहे हैं। एकबार ऐसा भी अवसर आगया था जब कि मूल स्थान को छोड़ कर अन्य स्थान में भी राजधानी बनानी पड़ी थी।

विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत्।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तम धन्विनां।
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नरर्षभ:।

यदुवंशी भद्रसेन के उत्तम धनुर्धारी तथा पराक्रमी सौ पुत्रों

को मार कर काशी जन पद की सीमा पर गोमती नदी के तट पर एक सुन्दर नगर बसाया था। एक तरफ हैहय वंशियों से युद्ध चल रहा था दूसरी तरफ पचवटी निवासी रावण का भाई खर † ने भी काशी राज्य के कुछ भू भाग पर अधिकार कर लिया था।

रावणावरजां: कश्चित्खरो नामेह राक्षसः।
धृष्टश्च जित काशी च नृशंसः पुरुषादकः॥

बाल्मीकि० अयोध्या कां० ११६। १२।

परंपरागत शत्रुता-

इतिहास के देखने से ज्ञात होता है कि न केवल काशीराज दिवोदास से बल्कि इन के पूर्वजों तथा पुत्र प्रतर्दन तक से भी यदुवंशियों, हैहयों का युद्ध होता रहा है। और कुछ दिन पूर्व तक वाराणसी नगरी यदुवंशी भद्रश्रेण्य के अधिकार में थी दिवोदास ने भद्रश्रेण्य के बलशाली तथा धनुर्धारी योद्धाओं को मार कर पुनः अधिकार किया था।

---

† ऋषि विश्रव की देव वर्णिनी, कैकसी, पुष्पोत्कटा, और वाका नाम की चार स्त्रियां थीं। देव वर्णिनी से कुबेर, कैकसी से रावण कुम्भकर्ण, विभीषण और शूर्पणखा। पुष्पोत्कटा से-महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व, और खर। वाका से-त्रिशिरा, दूषण और कुंभीनसी कन्या हुई थी।

आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रसेनः प्रतापवान् ।
वाराणस्याधिपो राजा कथितः पूर्व एवहि ॥ ब्रह्माण्ड पु०
भद्रश्रेण्यस्य पूर्वंतु पुरी वाराणसीत्यभूत् ।
भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं तेन बलीयसा ॥ हरिवंश ॥

भद्रश्रेण्य की नीति थी कि बार बार काशी देश पर आक्रमण करना, काशी के राजाओं को मारकर अथवा पराजित कर के वत्सा ‡ नाम की पुरी में भागजाना । जिस प्रकार कौरव पाण्डवों ने युद्धक्षेत्र कुरुक्षेत्र को बनाया था, उसी प्रकार इन्हों गंगा यमुना के मध्यवर्ती भाग को बनाया था ।

महाभारत — इस प्रसंग में महाभारत में सुन्दर एवं आकर्षक तथा विस्तार पूर्वक वर्णन किया है वह इस प्रकार है ।

काशीष्वपि नृपो राजन् दिवोदास पिता महः ।
हर्यश्व इति विख्यातो बभूव जयतांवरः ॥१०॥
स वीतहव्य दायादै रागत्य पुरुषर्षभ ।
गंगायमुनयोर्मध्ये संग्रामे विनिपातितः ॥११॥
तं तु हत्वा नरपतिं हैहयास्ते महारथाः ।
प्रति जग्मुः पुरीं रम्यां वत्सानां कुतोभयाः ॥१२॥

---

‡ जिला प्रयाग वर्तमान नाम कड़ा मानकपुर

हर्यश्वस्य च दायादः काशिराजोऽभ्यषिच्यत ।
सुदेवो देवसंकाशः साक्षाद्धर्म इवापरः ॥१३॥
संपालयामास महीं धर्मात्मा काशिनन्दनः ।
तैर्वीतहव्यैरागत्य युधि सर्वैर्विनिर्जितः ॥१४॥
तमथाजौ विनिर्जित्य प्रतिजग्मुर्यथागतम् ।
सौदेवस्त्वथ काशीशो दिवोदासोऽभ्यषिच्यत ॥१५॥
दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्यं तेषां महात्मनाम् ।
वाराणसी महातेजा निर्ममे शक्र शासनात् ॥१६॥

(अनुशासन पर्व अ० ३०)

भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं कि प्राचीन काल में काशी में हर्यश्व नाम के राजा थे । उनका गंगा यमुना के बीच में वीतहव्य के पुत्रों से युद्ध हुआ । और इसी युद्ध में हर्यश्व की मृत्यु होगई । इसके बाद हर्यश्व का उत्तराधिकारी सुदेव काशी का राजा बना । हैहयों ने अभ्यास के अनुसार सुदेव पर आक्रमण किया और सुदेव को भी मारकर वत्सापुरी को चलेगये । इसके बाद हमारे चरित्रनायक दिवोदास ने कंटकाकीर्ण शासन को संभाला तब उन्हों ने परिस्थिति पर गंभीरता पूर्वक विचार किया जिनके यहां पीढ़ी दर पीढ़ी युद्ध चलते रहें सेना के रूप में देश के युवकों तथा आत्मीयजनों की आहुति होती रहे । और नित्य ही युद्ध के निमित्त धन का व्यय होता रहे तो चिन्तित होकर मित्रों,

गुरुओं तथा श्रद्धास्पद जनों से परामर्श करना स्वाभाविक ही है। जब कि दिवोदास उन सुसंगठित बलशाली दृढ़ निश्चयी शत्रुओं के बल से पूर्णतया परिचित भी थे। और साथ ही निरन्तर होने वाले युद्ध जिनकी रंगभूमि गंगा और यमुना के बीच रही है उस दुष्परिणामों से भी परिचित थे।

ऐसी परिस्थिति में देवराज इन्द्र जो कि उनके गुरू भी थे उन से परामर्श किया। इस के बाद इन्द्र की आज्ञा से गंगानदी के उत्तार और गौमती नदी के दक्षिणी किनारे पर ऊंचे स्थान पर वाराणसी नाम की सम्भृद्धशाली पुरी बसाई थी। इस वाराणसी में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारो वर्ण बसे थे। बाजार बड़े सुन्दर बनाये गये थे। यह इतनी सुन्दर थी जितनी कि स्वर्ग में इन्द्र की राजधानी अमरावती थी। किन्तु जैसे ही दिवोदास ने अपना नगर बसाकर रहना प्रारम्भ किया वैसे ही शत्रुओं ने दिवोदास पर भी आक्रमण करदिया। बाध्य होकर दिवोदास को भी युद्ध में आना ही पड़ा। और यह देवासुर सग्राम के समान भयङ्कर युद्ध पूरे सौ दिन तक चलता रहा ॐ अन्त में सेना तथा आत्मीय जन सभी समाप्त होगये और कोष (खजाना) भी खाली होगया तब दिवोदास ने भाग कर ऋषि भरद्वाज जो कि दिवोदास

ॐ देवासुर सम घोरं दिवोदासो महाद्युतिः।
सतु यद्धे महाराज दिनानां दशतीर्दश। म०भा० अनुशा०प०३०।२०

के पुरोहित तथा गुरू भी थे उनके आश्रम ✱ में जाकर शरण ली दिवोदास के आश्रम में पहुंचने पर ऋषि भरद्वाज ने इस प्रकार आने का कारण पूछा † और साथ ही आश्वासन दिया कि मैं तुम्हारा हित करने में पूरा पूरा साथ दूंगा इस में कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचूंगा। इस के बाद दिवोदास ने हाथ जोड़ कर जो अपनी दुःख भरी कहानी सुनाई वह विदीर्ण हृदय (जख्मीदिल) वालों के ही समझने की चीज है। दिवोदास ने कहा कि हे भगवन उन पापी हैहय वंशियों ने मेरी समस्त सेना और मेरे वंश का नाश कर दिया है। केवल मैं ही अकेला बचा हूं अब आप की शरण में आया हूँ आप मेरे गुरू हैं अतः आप मेरी शिष्य के नाते से रक्षा कीजिये ‡ पाठक देखा कितनी करुणा जनक तथा मर्मस्पर्शी अपील है। उपरोक्त दुःख भरी कहानी को सुनकर ऋषि भरद्वाज ने दिवोदास की पूरी सहायता की। और कुछ दिन बाद दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन ने शत्रुओं को परास्त करके निश्चिन्तता की सांसली।

✱ ऋषि भरद्वाज का आश्रम प्रयाग में गंगा के तट पर था।

† तमुवाच भरद्वाजो ज्येष्ठः पुत्रः बृहस्पतेः।
पुरोधाः शील संपन्नो दिवोदासं महीपतिम्।
किमागमन कृत्यं ते सर्वं प्रब्रूहि मे नृप॥ अनुशासन प० ३०॥

‡ भगवन् वीतहव्यैर्मे युद्धे वंश प्रणाशितः।
अहमेकः परिद्यूनों भवन्तं शरणंगतः। २६
शिष्यस्नेहेन भगवंस्त्वं मां रक्षितुमर्हसि। अनुशा० प०॥

प्रतर्दन बड़ा वीर योद्धा तथा सत्यवादी था कुवलय उस के अश्व का नाम था। इसी कारण प्रतर्दन के शत्रुजित, द्युमान, ऋतध्वज, और कुवलयाश्व चार नाम और भी थे।

दिवोदासो द्युमांस्तस्मात् प्रतर्दन इतिस्मृतः।
"स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः।
तथा कुवलयाश्चेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः।"

भागवत० ९।१७।६।

विष्णु पुराण में कारण सहित लिखा है।

स च भद्रश्रेण्यवंश विनाशना दशेष शत्रवोऽनेनजिता इति शत्रुजिदभवत्। तेन च प्रीतिमतात्म पुत्रो वत्स वत्सेत्यभिहितो वत्सो ऽभवत्। सत्यपरतया ऋतध्वज संज्ञामवाप। ततश्च कुवलय नामानमश्वालेभे ततः कुवलयाश्व इत्यस्यां पृथिव्यां प्रथितः।

अर्थात् भद्रश्रेण्य वंश को नष्ट करके समस्त शत्रुओं को पराजित किया था इस कारण शत्रुजित नाम हुआ। सत्यवादी होने से ऋतध्वज। कुवलय नाम का इस के पास घोड़ा था इसलिये कुवलयाश्व। बाल्यकाल में स्नेहवश वत्स वत्स कहेजाने से वत्स नाम पड़गया था। वर्तमान समय में भी वच्चा वच्चू वच्चन मुन्ना मुन्नी आदि नाम भी इसी के द्योतक हैं। और जिस प्रकार दिवोदास का इन्द्र से संवन्ध था। उसी प्रकार प्रतर्दन का

भी रहा है ।

प्रतर्दनो हवै दैवोदासि रिन्द्रस्य प्रियंधामोपजगाम ।(काठकसं०)

भरद्वाज और प्रतर्दन के संवन्ध में श्रीयुत भगवतदत्त B. A. ने लिखा है कि—तांडय ब्राह्मण १५ । ३ । ७ । के अनुसार दिवोदास का पुरोहित भरद्वाज था । जैमिनीय ब्राह्मण ३ । २४४ में लिखा है कि प्रतर्दन का पुत्र चत्र, दस राजाओं के युद्ध में मानुष पर दस राजाओं से घिर गया वह अपने पुरोहित भरद्वाज के पास गया । गोपथ ब्राह्मण में भरद्वाज और प्रतर्दन का सम्बन्ध वताया है । एतेन हवै भरद्वाजः प्रतर्दनं समनह्यत् । उत्तरार्ध १।१८ (भारतवर्ष का इतिहास पृ०११६) उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि भरद्वाज इनके कुलपुरोहित तथा गुरू भी थे । इन के अतिरिक्त ऋग्वेद में दिवोदासाय भरद्वाजाय आदि पाठ अनेक स्थानों पर मिलते हैं, किन्तु हम यह नहीं वता सकते कि कौनसे दिवोदास के सम्वन्ध में हैं ।

वक्तव्य—भरद्वाज नाम के अनेक ऋषि हुये हैं । दिवोदास और दिवोदास के पूर्वज धन्वन्तरि के भरद्वाज गुरू थे यह लिखा जा चुका है कि दिवोदास के गुरू को महाभारत में देव गुरू वृहस्पति का पुत्र लिखा है " ज्येष्ठः पुत्रो वृहस्पतिः । बाल्मीकि ने रामायण में लिखा है कि ऋषि पुलस्त्य का पुत्र विश्रव से भरद्वाज की पुत्री देववर्णिनी का विवाह हुआ था * । ब्रह्माण्डपु०

---

* ज्ञात्वातु तस्य तद्वृत्तं भरद्वाजो महामुनिः ।
ददौ विश्रव से भार्यां स्वसुतां देववर्णिनीम् ॥ उत्तरकांड ३।३॥

में देववर्णिनी को बृहस्पति की कन्या लिखा है ※ । कुछ भी सही अन्ततो गत्वा भरद्वाज रावण के नाना या मामा संबन्धी अवश्य थे ।

एक भरद्वाज इन्द्र के शिष्य थे ऋषियों ने इन को इन्द्र के पास आयुर्वेद पढ़ने भेजा था । इन्होंने स्वर्ग में जाकर इन्द्र से पढ़ कर आत्रेय आदि ऋषियों को पढ़ाया था ⁂ । आत्रेय ने अग्निवेश हारीत आदि को पढ़ाया था । एक भरद्वाज ने आत्रेय पुनर्वसु की परिषद् में विवाद में भी भाग लिया था * एक भरद्वाज उसका कुमार शिरा भरद्वाज नाम था उसने भी पुनर्वसु की परिषद् में भाग लिया था † । कृष्णभरद्वाज ऋषि ने कश्यप की परिषद् में भाग लिया था‡ । एक भरद्वाज को याज्ञवल्क्य के साथ राज्य-त्याग के समय युधिष्ठिर ने भोजन कराया था ☺

※ बृहस्पतिः बृहत् कीर्तिर्देवा चार्यस्तुः कीर्तितः ।
कन्यां तस्यो पयेमे स नाम्नावै देववर्णिनीम् । ब्रह्माण्डपु० ३।८।३८।

⁂ ऋषयश्च भरद्वाजा ज्जगृहुस्तं प्रजाहितम् । चरक सू० १ ।

* भरद्वाजस्तु नेत्याह कर्ता पूर्वं हि कर्मणः । चरक सू० २५ ॥

† तच्छ्रुत्वा वाक्यं कुमार शिरा भरद्वाज उवाच । च० सू० १२ ।

‡ चत्वारो रोगा आगन्तु वात पित्त कफ जा इति कृष्णभरद्वाज ।
का० सं० पृ० २६ ।

☺ भरद्वाजं याज्ञवल्क्यं हरिमुद्दिश्य यत्नवान् ।
महाभारत महाप्रस्थानिक पर्व १।१२।

एक भरद्वाज पुरुवंशी भरत के पुत्र थे भरत की सन्तानों के नष्ट होने पर भरत ने राजा मरुत से भरद्वाज को गोद लेलिया था 🙞। ये भरद्वाज भी देव गुरु बृहस्पति के ही पुत्र थे। बृहस्पति ने अपने भाई उतथ्य के क्षेत्र में उत्पन्न किये थे ⁂। बृहस्पति की भाभी का नाम ममता था यह राजा मरुत की पुत्री थी। प्रसव होने पर पति त्याग के भय से ममता ने रक्खा नहीं और न बृहस्पति ने ही ग्रहण किया ❦। तब ममता के पिता मरुत ने इन का पालन होषण किया था। ये वितथ भरद्वाज नाम से प्रसिद्ध हुये और इनके पुत्र का नाम भुवमन्यु था। इस घटना का समर्थन प्रथम शताब्दी ई-में होनेवाले अश्वघोष ने भी किया है। ❋

🙞 भरतस्य विन ष्टेषु तनयेषु पुराकिल।
पुत्राणां मातृकात् कोपात् सुमहान् संक्षयः कृतः। १४
तते मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः। मत्स्य पु० ४६।

⁂ अन्तर्वत्न्यां भ्रातृ पत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः।
प्रवृत्तोवारितो गर्भं शप्त्वा वीर्य मवासृजत्।
तं त्युक्तु कामां ममतां भर्तृत्याग विशंकिताम्।
मूढ़े भरद्वाज मिमं भरद्वाज बृहस्पतेः। भागवत।६।२०।३८।

❦ सद्योजातं कुमारंतु दृष्ट्वात ममता ब्रवीत्।
गमिष्यामि गृहं स्वंवै भरस्वैनं बृहस्पते।
एव मुक्त्वा गतासातु गतायां सोपितं त्यजत्। मत्स्यपु० ४६।२५

❋ उतथ्यस्य च भार्यायां ममतायां महातपः।
भारुत्यां जनयामास भरद्वाजं बृहस्पतिः। बुद्धचरित ३।७४।

हर्यश्व और सुदेव—

महाभारत के मूल पाठ में दिवोदास के पितामह का हर्यश्व और पिता का नाम सुदेव लिखा है। जब कि भागवत हरिवंश आदि में क्रमशः केतुमान और भीमरथ लिखे हैं। इसमें कोई सन्देह की बात नहीं। इतिहास कारों ने प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषों की गणना की हैं। और मध्यवर्ती नामों को छोड़दिया है। अतः वंशावलियों में हर्यश्व और सुदेव नाम नहीं मिलते। हां निःसन्देह लेखकों, प्रकाशकों की भूल अथवा प्रमाद के कारण भी अनेक स्थलों पर पाठ त्रुटित एवं भ्रष्ट हुये हैं। जिसके एक नहीं सैकड़ों प्रमाण हैं। इस में भी हमारा ही दोष है प्रकाशन के समय इनको शुद्ध करने का प्रयत्न ही नहीं किया जाता। पुराणों को शुद्ध करने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। एक पक्ष का मत है कि ये गप्प तथा कल्पित कहानी हैं इसके विपरीत दूसरे पक्ष का विश्वास है कि ये सब सर्वांश में सत्य हैं इस में मात्रा तक भी नहीं घटाई या बढ़ाई जासकती इस प्रकार दो परस्पर विरोधी विचार धाराओं के रहते इन में शुद्ध अशुद्ध का प्रश्न हो नहीं उठता। इसके अतिरिक्त काशिराजों की वंशावली है भी संक्षिप्त। और मनुवंशी शर्याति वंश तो बहुत ही संक्षिप्त लिखा है। हां निःसन्देह सूर्यवंश में रघुवंश को कुछ विस्तार से अवश्य लिखा है। जैसे—चन्द्रमा से लेकर काशीराज दिवोदास की संख्या १४ और पांचाल नरेश दिवोदास की २७ है। सूर्यवंशी मिथिला

नरेश जनक (सीरध्वज) की २५ है तो उधर दशरथ की संख्या ६२ है। ये उपरोक्त संख्यावाले महापुरुष समकालीन हैं । और आद्य त्रेतायुग से त्रेता द्वापर की सन्धि तक की संख्या हैं। अब देखिये सूर्यवंशी शर्याति जोकि मनु का पुत्र था उसकी वंशावली इस प्रकार है। मनु का शर्याति, शर्याति का आनर्त पुत्र और सुकन्या नाम की पुत्री । आनर्त का रेवत, और रेवत का रैवत या ककुद्मि, ककुद्मि की पुत्री रेवती वह बलराम जी की पत्नी बनी इस प्रकार केवल चार संख्या होती हैं। और होती हैं त्रेता से लेकर द्वापर के अन्त तक, चार नामों में दो युग बीत गये । इस प्रकार महाभारत के हर्यश्व और सुदेव नाम भी यदि वंशावलि में नहीं हैं तो आश्चर्य ही क्या है और सन्देह भी क्यों है।

दिवोदास ही धन्वन्तरि थे।

दिवोदास के सम्बन्ध में पर्याप्त लिखा जाचुका है और इस से अधिक लिखना व्यर्थ है ! इस के बाद इतना और कहदेना चाहते हैं कि दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन ने समस्त शत्रुओं को परास्त कर दिया और दिवोदास ने प्रतर्दन को काशी राज्य का भार सौंप दिया। सांसारिक जीवन से विरक्त होकर दिवोदास वान-प्रस्थी होगये और आश्रमवासी होकर आयुर्वेद के अध्यापन द्वारा देश की सेवा करने लगे।

अब हम को यह सिद्ध करना है कि यही काशी के राजा दिवोदास धन्वन्तरि थे और ये ही विश्वामित्र के पुत्र सुश्रुत के गुरू थे।

हरिवंश ने दिवोदास को जीवाणु शास्त्र का ज्ञाता बताया है। "दिवोदास इति ख्यातः सर्व रक्षो विनाशनः"। ऐसा कहकर वैद्याचार्य स्वीकार किया है। सुश्रुत ने स्पष्ट ही अष्टांग आयुर्वेद का पूर्ण ज्ञाता कहा है। और आयुर्वेद के ज्ञान में समुद्र की उपमा दी है। "अष्टाङ्ग आयुर्वेद विदं दिवोदासं महोदधिम्।" क्यों कि शल्य चिकित्सा (सर्जरी के) विशेष कर पारंगत थे अतः इन का नाम धन्वन्तरि भी था। धन्वन्तरि का अर्थ है शल्य शास्त्र का पारंगत। धन्वं शल्यं अन्तं पारं इयर्ति गच्छतीति धन्वन्तरिः। ऋषि विश्वामित्र ने इन सब बातों को जानकर ही अपने पुत्र सुश्रुत को दिवोदास के पास आयुर्वेद पढ़ने को भेजा था। सुश्रुत को भेजते समय जो विश्वामित्र ने दिवोदास का परिचय दिया है उस से हमारे कथन की पूर्णतया पुष्टि होती है। विश्वामित्र ने कहा है

वत्स वाराणसीं गच्छ त्वं विश्वेश्वर वल्लभाम्। ७७।
तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति बाहुजः।
स हि धन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेद विदांवरः॥ ७८॥
आयुर्वेद पठस्व त्वं लोकोपकृति हेतवे।
पितुर्वचनं माकर्ण्य सुश्रुतः काशिकांगतः॥ ७९॥
तेन सार्धं समध्येतुं मुनिस्तुनुशतं ययौ।
अथ धन्वन्तरिं सर्वे वानप्रस्थाश्रमे स्थितम्॥ ८०॥

भगवन्तं सुरश्रेष्ठं मुनिभिर्वहुभिस्तुतम् ।
काशिराजं दिवोदासं ते ऽपश्यन्विनयान्वितः । भावप्रकाश ।

हे पुत्र सुश्रुत तुम काशी पुरी में जावो। वहां पर क्षत्रिय कुल में उत्पन्न काशी के राजा दिवोदास हैं उन्हीं का नाम धन्वन्तरि भी है। उन से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करो । पिता की आज्ञानुसार सुश्रुत काशी में दिवोदास के पास गये साथ में और भी सैकड़ों ऋषि पुत्रों को लेगये ।

काशी में पहुच कर सुश्रुत आदि ऋषि कुमारों ने दिवोदास को वानप्रस्थ आश्रम में देखा था। इस कथन का समर्थन सुश्रुत संहिता से भी होता है।

"अथ खलु भगवन्तं अमरवरं ऋषिगण परिवेष्टितं आश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिं औपधेनव वैतरण औरभ्र पौष्कलावत करवीर्य गोपुर रक्षित सुश्रुत प्रभृतय ऊचुः" । सुश्रुत सू० १ ।

अर्थात् ऋषिगणों से घिरे हुये भगवान काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि से सुश्रुत आदि शिष्यों ने पूछा था। इस प्रकार भावप्रकाश तथा सुश्रुत संहिता दोनों ही दिवोदास को धन्वन्तरि बताते हैं। और दोनों ही ऋषिगणों से परिवेष्टित आश्रमवासी कहते हैं । तथा मुनि तपस्वी आदि वाक्य भी आश्रम

वासी होने की साक्षी दे रहे हैं। †

अतिरिक्त इस के सुश्रुत संहिता में दिवोदास और धन्वन्तरि दोनों ही नाम सुश्रुत के गुरू के रूप में मिलते हैं। जिसका अभिप्राय भी यही है कि दिवोदास और धन्वन्तरि नाम वाले एक ही व्यक्ति थे। और सब से बड़ा प्रमाण यह है कि दिवोदास स्वयं अपने को धन्वन्तरि नाम से घोषित करते हैं।

"अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजा मृत्युहरोऽमराणाम्।
शल्यांग मंगैरपरैरुपेतं प्राप्तोस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम ॥

(सुश्रुत)

मैं देवताओं के रोग बुढ़ापा और मृत्यु को नष्ट करने वाला धन्वन्तरि रसायन तंत्र भूत विद्या काय चिकित्सा आदि जो अन्य आयुर्वेद के अंग हैं उनके साथ साथ शल्यशास्त्र का उपदेश करने के लिये इस संसार में आया हूं।

इस के अतिरिक्त सुश्रुत और धन्वन्तरि के वाद में होने वाले आयुर्वेदाचार्यों ने तथा इतिहास ग्रन्थों ने भी दिवोदास का दूसरा नाम अथवा उपाधि धन्वन्तरि ही स्वीकार किया है।

---

† राजर्षिं रिन्द्र प्रतिमो वभूव। सु नि० ७१।
शिष्यं काशिपतिमु निः। सु० उत्तर तंत्र ८।१।
तपो धर्म भृतांवरः। सु० क १।१।

जिस के कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं।

"सर्वांग निर्वृत्तिर्युगपदिति धन्वन्तरि।" (च०शा० ६।२४।)

दाहे धन्वन्तरीयाणामत्रापि भिषजां बलम्। (च० चि० ५।४१)

संप्रयुक्तै मंत्रैर्ब्रह्माण मग्निं धन्वन्तरिं प्रजापतिमश्विनौइन्द्र मृषींश्च। (च० वि० ८) वृद्धेत्वसाध्याविज्ञेयं मतं धन्वन्तरेरिदम्। (माधव)। धन्वन्तरेस्तु त्रिषयाह। वागभट शा०३।१६

सैव धन्वन्तरिमते कलापित्तधराह्वया। वाग्भट शा० ३।५०।

प्रजापतये स्वाहा, कश्यपाय स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा, धन्वन्तरये स्वाहा। काश्यप संहिता पृ० ३६।

अग्निषोमं वैश्वदेवं धान्वन्तर्यमनन्तरम्।

प्रजानां पतये चैव पृथक् होमो विधीयते। म-भा-अनुशा-प- ९७

एवं धन्वन्तरिः प्राह सुश्रुताय च वैद्यकम्। गरुड़ पु० २०४।१।

धन्वन्तरि उवाच—शारीरामानसागन्तु सहजा व्याधयो मताः।

शारीरा ज्वर कुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसामताः।

आगन्तवो हि घातोत्था सहजाः क्षुज्जरादयः।

(आग्नेय पु० २८०।१) आदि आदि।

उक्त प्रमाणों के आधार पर सिद्ध है कि दिवोदास का ही नाम धन्वन्तरि था। इस प्रकार के नामों को पद या उपाधि कहते हैं।

संभव है शल्य विशेषज्ञ होने के कारण हो।

शल्यं धन्वं अन्तं पारं इयर्ति गच्छतीति धन्वन्तरिः।

अथवा दिवोदास के पूर्वज धन्वन्तरि जो कि इन से केवल चार पीढ़ी पहले हुये थे। वे आयुर्वेद के प्रवर्तक थे, और जिनकी चिकित्सा संबन्धी योग्यता का दिग्दर्शन श्रीमद्भागवत ने "स्मृत मात्रार्ति नाशनः" लिख कर किया है। उन के समान दिवोदास को मान कर उन की स्मृति में धन्वन्तरि नाम या उपाधि मिली हो। कारण कुछ भी सही दिवोदास ही धन्वन्तरि थे यह निश्चित है और यह भी संभव है कि जिस प्रकार मिथिला नरेशों की जनक या विदेह, केकय नरेशों की अश्वपति, नागराजों की वासुकि और तक्षक रूस के सम्राट की ज़ार उपाधि बनगई थी उसी प्रकार काशिराजों की भी धन्वन्तरि उपाधि बनगई हो। हां यह अवश्य है कि महाभारत के पश्चात् काशीराजों की उपाधि ब्रह्मदत्त होगई थी। जिस के प्रमाण ये हैं। "अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्तो रज्जं कारेन्ते"। (चम्मसाटक जातक) संस्कृत (चर्मशाटक-जातक) पहिले वाराणसी में ब्रह्मदत्त नामक राजा राज्य करता था। चुल्लक सेट्ठि में (चुल्लक-श्रेष्ठि) इस प्रकार लिखा है 'अतीते कासि रट्ठे वाराणसीयं ब्रह्मदत्त रज्जं कारेन्ते'। उच्छंग (उत्संग) वेदब्भ (वैदर्भ) राजोवाद (राजा व वाद) आदि जातकों में भी ब्रह्मदत्त नाम ही उपलब्ध होता है।

यह कहना भी प्रासंगिक ही है कि दिवोदास न केवल

मानव आयुर्वेद के ज्ञाता थे अपितु अश्व आयुर्वेद हस्ति आयुर्वेद के भी ज्ञाता थे। सुश्रुत ने धन्वन्तरि से उक्त तीनों ही आयुर्वेद पढ़े थे।

हयायुर्वेद मास्याख्ये हयंसर्वार्थ लक्षणम् । गरुड़ पु० २०१।१।

गजायुर्वेद मास्याख्ये उक्ताः कल्याः गजेहिताः ।

गरुड़ पु० २०१।३३।

उक्त कथन का समर्थन आग्नेय पुराण से भी होता है।

आयुर्वेदं मम ब्रूहि नराश्वेभ रुग्दनम् । **सिद्धियोगान् सिद्ध मंत्रान् मृतसञ्जीवनी करान्** । आग्नेय पुराण २७६।२।

सुश्रुत धन्वन्तरि से कहते हैं कि आप मुझे न केवल मनुष्य आयुर्वेद की अपितु अश्व आयुर्वेद तथा गजायुर्वेद की भी शिक्षा दें। धन्वन्तरि सुश्रुत से कहते हैं कि "अश्ववाहन सारंच वक्ष्ये चाश्व चिकित्सितम्"। (आग्नेय पुराण २८८) स्मरण रहे विद्या व्यसनी एवं ज्ञान पिपासु पुरुष एक ही स्थान पर नहीं बंधता उसे जहां कहीं भी कुछ मिलता है वह वहीं से ले लेता है, सुश्रुत भी इसी प्रकार के थे उन्हों ने धन्वन्तरि से अश्व आयुर्वेद में जो कुछ मिला वह सीखा फिर अश्व आयुर्वेद विशेषज्ञ शालिहोत्र का दरवाजा जा खटखटाया और उन से भी अश्व आयुर्वेद को सीखा।

अश्वानां लक्षणं वक्ष्ये चिकित्सां चैव सुश्रुत । आग्नेयपु० २८९

अश्व शान्ति प्रवक्ष्यामि वाजि रोग विमर्दिनीम् । आ०पु० ९०

शालिहोत्रः सुश्रुताय हयायुर्वेद मुक्तवान् । आग्नेय पु० २६२

शालिहोत्र अनेक हुये हैं जिन में एक सुश्रुत के गुरु शालिहोत्र से पहिले होचुके हैं हैं । उन का स्मरण कुंडिनपुर जाते समय सूर्यवंशी ऋतुपर्ण ने भी किया है ।

किन्नु स्यान्मातलिरयं देवराजस्य सारथिः ।
शालिहोत्रोऽथ किन्नु स्याद्धयानां कुलतत्ववित् ॥

महाभारत वन पर्व ७१।२७ ।

दमयन्ति के द्वितीय स्वयंवर के लिये ऋतुपर्ण विदर्भ देश के कुन्डिनपुर में में जारहे थे नल सारथि थे । राजा नल की रथ संचालन कला से चकित होकर ऋतुपर्ण ने कहा है कि क्या यह देवराज इन्द्र का सारथि मातलि है अथवा अश्व कुलवेत्ता शालिहोत्र है । वस्तुतः बात यह है कि उस युग में राजा भी सभी व्यवहारिक विद्या या कलाओं का अध्ययन किया करते थे । और ऋषि भी सभी विद्याओं के ज्ञाता होते थे ।

इसी दिवोदास के समकालीन अंगदेश के राजा रोमपाद थे ।सूर्यवंशी दशरथ के मित्र थे । रोमपाद निःसन्तान थे अतः राजा दशरथ ने शान्ता नाम की अपनी पुत्री रोमपाद को देदी थी । और वह ऋषि शृङ्गी को व्याही गई थी ×। अस्तु राजा

× लोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ।
शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृश्य शृङ्ग उवाहताम् ।भाग० ६।२४।७।

लोमपाद ने ऋषिपालक से गजायुर्वेद की शिक्षा पाई थी।

गजायुर्वेदं प्रोवाच पालको ऽत्यंग राजकम्। आग्नेय०२८७।१।

पालको ऽप्यंगराजाय गजायुर्वेदमब्रवीत्। आग्नेय पु० २६२।

धन्वन्तरि के गुरू।

धन्वन्तरि ने शुश्रुत आदि शिष्यों से अपने को इन्द्र का शिष्य बताया है। "अश्विभ्याम् इन्द्रः, इन्द्रादहं"। साथ ही वे ऋषि भरद्वाज के भी शिष्य थे जैसा कि धन्वन्तरि ने स्वयं कहा है। "शिष्य स्नेहेन भगवन् त्वं मां रक्षितु महसि।" (यह पहिले लिखा जाचुका है) मैं आपका शिष्य हूं अतः आप मेरी रक्षा कीजिये। इस प्रकार स्वयं धन्वन्तरि ने अपने को ऋषि भरद्वाज और देवराज इन्द्र दोनों काही शिष्य स्वीकार किया है। परन्तु यह कहना कठिन है कि धन्वन्तरि ने आयुर्वेद का कौनसा अंग इन्द्र से सीखा था। यह सत्य है कि सुश्रुत पुष्कलावत आदि शिष्यों की प्रार्थना पर उनको शल्य प्रधान आयुर्वेद की शिक्षा दी थी। जैसा कि सुश्रुत संहिता से स्पष्ट है।

त ऊचुः अस्माकं सर्वेषामेव शल्यज्ञानमूलं कृत्वोपदिशतु भगवानिति। सहोवाच एवमस्तु इति। (सुश्रुत सू० १।१०)

× (शेष पेज ७६) ब्रह्मपुराण में रोमपाद का दूसरा नाम दशरथ लिखा है। अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथो ऽभवत्। लोमपाद इतिख्यातो ११।४०।

और यह प्रार्थना सुश्रुत आदि शिष्यों ने तव की है जव कि धन्वन्तरि ने आयुर्वेद के आठों अङ्गों का विश्लेषण करके शिष्यों को समझा दिया था। समझने के वाद ही शिष्यों ने शल्य शास्त्र (Surgery) को अधिक महत्वपूर्ण समझ कर उसे सीखने की प्रार्थना की थी और अध्यन के बाद अपने नाम से शल्य तंत्रों का निर्माण भी किया था जिन में औपधेनव सुश्रुत औरभ्र और पौष्कलावत मुख्य थे *। यह मानलेना भी भूल ही होगी कि ऋषि भरद्वाज ऋषि होने के कारण अच्छे शल्य चिकित्सक (Surgen) न होंगे अतः शल्यशास्त्र इन्द्र से पढ़ा होगा। इस के उत्तर में इतना कहना ही पर्याप्त है कि धन्वन्तरि के पूर्वज प्रथम धन्वन्तरि भी ऋषि भरद्वाज के ही शिष्य थे। जिन्हों ने समस्त आयुर्वेद का अध्ययन ऋषि भरद्वाज से ही किया था। और अध्ययन के वाद आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त किया था। तव शिष्यों को पढ़ाया था। और उन शिष्यों ने हजारों शिष्य बनाये थे। ये धन्वन्तरि वड़े योग्य चिकित्सक थे। देवता भी इनका लोहा मानते थे, इनको यज्ञों में भाग देते थे। (सम्मानित

---

* औपधेनव औरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम्!
शेषाणां शल्य तंत्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत्। सु० सू० ४।८।

अथ परम कारुणिको विश्वामित्र सुतः सुश्रुतः।
शल्य प्रधान आयुर्वेद तंत्रं प्रणे तुमारब्धवान ॥ तंत्रान्तरे॥

भोजों में आमन्त्रित करते थे) इनके स्मरण मात्र से रोग नष्ट होते थे। और विष्णु के अवतार थे †। और यह भी संभव है जिस प्रकार के शल्य शालाक्य आदि आयुर्वेद भाग ब्रह्मा जी ने किये थे उन में और धन्वन्तरि कृत भागों में भी कुछ अन्तर हो यदि ऐसा है तो ब्रह्माकृत विभाग उस काल तक स्वर्ग लोक तक ही सीमित रहे होंगे। क्योंकि इनको भारत में प्रचलित करने का श्रेय तो दिवोदास धन्वन्तरि को है। जैसा कि धन्वन्तिरि ने स्वयं कहा है—

ब्रह्मा प्रोवाच ततः प्रजापतिरधिजगे तस्मादश्विनौ।
अश्विभ्यामिन्द्रः इन्द्रादहं मयातु इह प्रदेय मर्थिभ्यः प्रजा हित हेतोः ॥ सुश्रुत सू० १।१८।

ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति ने प्रजापति दक्ष से अश्विनी कुमारों ने अश्विनी कुमारों से देवराज इन्द्र ने और इन्द्र से मैं ने आयुर्वेद सीखा है। धन्वन्तरि जी से सुश्रुत औपधेनवादि शिष्यों ने सीखा था। इस तरह यह ग्रुप धन्वन्तरि संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ किन्तु इसका यह अर्थ लगाना जैसा कि लगाया जाता है कि आयुर्वेद का प्रादुर्भाव ही धन्वन्तरि जी द्वारा हुआ है बस यही भूल है। उक्त धारणा रखने वाले महानुभावों से मेरा नम्र निवेदन है कि उन्हें जानना चाहिये कि वेद और आयुर्वेद सृष्टि के

---

† यज्ञ भुग्वासुदेवांशः स्मृत मात्रार्तिनाशनः। भागवत।

आरंभ के हैं । वेदों में आयुर्वेद का वर्णन पर्याप्त है चाहे वह सूत्र रूप से ही सही उसका कुछ दिग्दर्शन इस प्रकार है।

वेदों में ज्वर विषम-ज्वर यक्ष्मा आदि अनेक रोगों का उल्लेख है § । पिप्पली और अपामार्ग कुष्ठ और गूगल आदि सैकड़ों औषधियों के गुणों का वर्णन है ‡ । वेदों में वायु के गुणों का उल्लेख है ¶ । वेदों में व्रण (घाव) को धोने का विधान है साथ

---

§ यो अन्येद्यु रुभयद्यु रभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्विव्रतः। अथर्व ७।११६।२

यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिकाज्जिह्वाया विवृहामिते। ऋ० १०।१६३।१

‡ पिप्पली विश्व भेषजी । अथर्व २

अपामार्ग—श्यावदता कुनाखिना वण्डेन यत् सहातिम।

अपामार्गत्वयावयं सर्वं तदप मृज्महे। अथर्व ७।६७।३।

वण्डेन निर्वीयः षण्डो वन्ड उच्यते। (सायण)

वण्डो विभाजकः । (जयदेव)

वण्डो भग्नाङ्ग इति (ह्विटनिः)

कुष्ठ– एतुदेवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।

तक्मानं सर्वंनाशय सर्वाश्च यातुधान्यः। अथर्व १६।३६

गूगल— नतां यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।

यं भेषजस्य गुलगुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते। अथर्व १६।३८।१

¶ वात आवातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।

प्राण आयूंषितारित्। ऋक० १०।१८६।१।

में जल के गुण भी हैं * । वेद में सूर्य किकित्सा है § । और जीवाणुओं का वर्णन है † और त्रिदोष का भी वर्णन है ‡ । और जल चिकित्सा का भी उल्लेख है । जल के गुणों में लिखा है कि इस से पैतृक रोग जीवाणु जन्य रोग आदि सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ । इस के अतिरिक्त शरीर के स्नायु आदि सभी अंगों का वर्णन पर्याप्त मिलता है जिस में से एक यह भी है ✠। वेदों में सर्प दंश हरण सर्प विज्ञान जीवाणु नाशिनी चिकित्सा ¶ । यक्ष्मा

* जालाषेणाभिषिञ्चत जालाषेणोपषिञ्चत ।
जालाषमुग्रभेषजं तेन नो मृडजीवसे । अथर्व ६।५७।२।

§ उद्यन्नदित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमियो गवि । अथर्व ॰ ।

† येक्रिमयः पर्वतेषु वनेषु औषधिषु पशुषु अप्सुअन्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ।
[अथर्व का० २]

‡ त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती । ऋ० १।३४।६

॥ आप इद्वा उ भेषजी रापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मृञ्चन्तु क्षेत्रियात् ।
ऋ.क० १०।१३७।६ ।

✠ शतस्य धमनीनां सहस्रास्य हिराणाम् । अथर्व १।१७।३।
इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत । अथर्व ७।३६।२ ।

¶ लेखक का देखो भारतीय जीवाणु विज्ञान ।

चिकित्सा आदि आयुर्वेद विज्ञान विषय का सविस्तृत वर्णन है। और इन वेदों के ज्ञाता न केवल ब्राह्मण अपितु राजे भी हुआ करते थे। सोमवंशी ययाति कहता है कि मैंने समस्त वेदों का अध्ययन किया है।

ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृत्स्नं श्रुतिपथंगतः।
राजा ऽहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विश्रुतः॥

मत्स्य पु० ३०।१४। म०भा०आ०प० ८१।१४।

उस युग में न केवल वेदों के ज्ञाता थे अपितु मंत्र द्रष्टा या कर्ता भी थे † जिन के उदाहरण ये हैं। वैन्य पथु, विवस्वान्, वैवस्त मनु, वैवस्त यम, विरूप, बुध बुध पुत्र पुरूरवा, बृहस्पति, दैत्य गुरु उशना, च्यवन, मांधाता (सूर्यवंशी) जमदग्नि आदि। और न केवल पुरुष ऋषि थे स्त्रियां भी ऋषि थीं दक्ष पुत्री अदिति (इन्द्र की माता) सूर्य पुत्री यमी पुलोमा दानव की पुत्री शची (इन्द्र की स्त्री) आदि आदि। ये तो मानव थे देव वंशज थे आर्य थे। परन्तु दक्षिण भारत के निवासी वानर जिनको आज सचमुच ही बानर मान लिया है वे भी वेदों के तथा व्याकरण के पूर्ण ज्ञाता थे। ऋष्यमूक पर्वत पर श्री राम और लक्ष्मण की हनुमान से मुलाकात होने के बाद व नर हनुमान की योग्यता

† कुछों का मत है कि ऋषि मंत्र द्रष्टा हैं और कुछ कहते हैं कि ऋषि मंत्र कर्ता हैं।

के सम्बन्ध में श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण से कहते हैं कि—

एतत् श्रुत्वा वचस्तस्य रामोलक्ष्मणमब्रवीत् ।
नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः ।
नासामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ।
नूनं व्याकरणं कृत्सनमनेन बहुधा श्रुतम् ।

वाल्मीकि किष्किन्धा का० ३

अर्थात् इस वानर (बन्दर) हनूमान ने तीनों वेद—ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद तथा संपूर्ण व्याकरण का अध्ययन किया है। ऐसी स्थिति में जब कि वेद और वेद के ज्ञाता मौजूद थे और वेदों में आयुर्वेद है तब यह कैसे संभव है कि आयुर्वेद का प्रादुर्भाव दिवोदास या धन्वन्तरि से हुआ।

यह हम लिख चुके हैं कि दिवोदास धन्वन्तरि के पूर्वज प्रथम धन्वन्तरि ने ऋषि भरद्वाज से आयुर्वेद पढ़कर शिष्यों को पढ़ाया। और यह भी लिख चुके हैं कि सूर्य से जनक च्यवन काशिराज जाजलि आदि महानुभावों ने भी आयुर्वेद का अध्ययन किया था। आखिर उन्होंने भी पढ़ाया ही होगा। रघुवंश में कालीदास ने लिखा है कि कौमारभृत्य में कुशल वैद्यराजा दिलीप की स्त्री सुदक्षिणा की गर्भावस्था में नियुक्त किये गये थे ॐ।

ॐ कुमार भृत्या कुशलैरनुष्ठितेभिषग् भिराप्तैरथ गर्भ मर्मणि।

रघुवंश ३।१२

महाराज नैपाल के राजगुरू विद्वद्वर हेमराज शर्मा ने हेमाद्रि लक्षण प्रकाश के अनुसार आयुर्वेद प्रवर्तकों के नाम इस प्रकार लिखे हैं ।

वशिष्ठो वामदेवश्च च्यवनो भारविस्तथा ।
विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजश्च वीर्यवान् ।
असितो देवश्चैव कौशिकश्च महाव्रतः ।
सावर्णिर्गालवश्चैव मार्कण्डेयस्तु वीर्यवान् ।
गौतमश्च भागश्च आगरूप (१) काश्यपस्तथा ।
आत्रेयः शाण्डिलश्चैव तथा नारद पर्वतौ ।
काण्वगो नहुषश्चैव शालिहोत्रश्च वीर्यवान् ।
अग्निवेशो मातलिश्च जतुकर्णः पराशरः ।
हारीतः क्षारपाणिश्च निमिश्च वदतांवरः ।
अदालकिश्च भगवान् श्वेतकेतुर्भृगुस्तथा ।
जनकश्चैव राजर्षिस्तथैव हि विनग्नजित् ।
विश्वेदेवाः समरुतो भगवांश्च बृहस्पतिः ।
इन्द्रश्च देवराजश्च सर्वलोक चिकित्सकाः ।
आयुर्वेदस्य कर्तारः सुस्नातंतु दिशन्तुते ।

(उपोद्घात काश्यप संहिता पृ० २३)

ऋषि वशिष्ठ, वामदेव, च्यवन, भारवि, विश्वामित्र, जमदग्नि,

भरद्वाज, आसित, देवल, कौशिक, सावर्णि, गालव, मार्कण्डेय, गौतम भाग, आगरूप, काश्यप, आत्रेय, शांडिल, नारद पर्वत काण्वग, नहुष, शालिहोत्र, अग्निवेश मातलि, जतुकर्ण, पराशर हारीत, क्षारपाणि, निमि, अदालकि, श्वेतकेतु, भृगु, राजर्षि जनक, वितग्नजित्, बिश्वदेव, मरुत, बृहस्पति, और देवराज इन्द्र, ये सब आयुर्वेद के प्रवर्त्तक हैं।

उपरोक्त नाम एक युग के नहीं हैं। बल्कि आद्य त्रेता से लेकर द्वापर के अन्त तक के हैं। इन में से कुछ नाम असित, च्यवन, जमदग्नि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, काश्यप, आदि नाम तो चरक संहिता में भी उपलब्ध हैं। और शौनक गौतम तथा मार्कण्डेय तीन नाम ऐसे हैं जिन्हों ने दिवोदास के अध्ययन के समय भी वाद विवाद में भाग लिया था। (सुश्रुत शा० स्था० ३) और इनके नाम चरक संहिता में भी हैं। कहा नहीं जा सकता ये कौन हैं। इसी प्रकार च्यवन भी अनेक हैं इनका समय भी संदिग्ध है। किन्तु यह निश्चय है कि चन्द्रवन्शी नहुष आद्य त्रेतायुग का था और यह आयुर्वेद का प्रवर्तक था †। और शालिहोत्र भी बहुत प्राचीन काल का था ‡ प्राचीन युग में

---

† नहुष की पुत्री रुचि ऋषि च्यवन के पुत्र आप्नवान को ब्याही थी

‡ शालिहोत्र की चर्चा अयोध्यापति ऋतुपर्ण ने की है अतः यह ऋतुपर्ण से पहिला था, और ऋतुपर्ण रामचन्द्र जी के पूर्वजों में था

इन सबों की संहितायें थीं कुछों के नाम यत्र तत्र अब भी मिल जाते हैं ¶ । उपरोक्त पाठ में कौशिक और विश्वामित्र दो नाम हैं और दोनों हीं पर्यायवाची हैं। कुशिक वंशज होने के कारण विश्वामित्र का नाम कौशिक है । किन्तु कुशिक यदुवंशी भी हुआ है चेदि इसी का पुत्र था इसी के नाम पर चेदि वंश हुआ संभव है इसी के वंश का कोई कौशिक हो।

दक्षिण भारत—

यह तो रही आर्यों की बात कि दिवोदास के ही युग में दक्षिण भारत के बानर सुषेण, ऋक्ष जाम्बन्त और गरुड़ आदि आयुर्वेद के ज्ञाता थे। उन्हों ने संजीवनी विशल्यकरणी आदि औषधियों द्वारा मरणासन्न श्री राम तथा लक्ष्मण को जीवन दान दिया था। इसका वर्णन इस प्रकार है—राम लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर जांवन्त ने संजीवनी विशल्य करणी आदि औषधियों को लाने के लिये हनुमान को हिमालय के समीप ऋषभ तथा कैलाश पर्वत भेजा था ঌ

लक्ष्मण के क्षत-विक्षत होने पर सुषेण ने औषधियों का

¶ च्यवनं गौतमी तंत्रो तथा च भद्रशौन के।

ঌ मृतसंजीवनी चैव बिशल्यकरणीमपि
सुवर्णकरणीं चैव संधानीं च महौषधीम् ।
हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनुमन् गन्तुमर्हसि । युद्ध का० ७४ ।

नस्य दिया था इस नस्य मात्र से लक्ष्मण स्वस्थ होगये थे *। स्मरण रहे यह सुषेण तारा का पिता और वालि का श्वसुर था ‡। एक वार युद्ध क्षेत्र में रावण की शक्ति से लक्ष्मण को भारी चोट लगी जीवन की आशा न रही श्री रामचन्द्र जी रोने लगे, तव सुषेण ने अपने आयुर्वेद विज्ञान का परिचय दिया था।

न ह्यस्य विकृतं वक्त्रं न च श्यामत्वमागतम् ।
सु प्रभं च सु प्रसन्नं च मुखमस्य निरीक्ष्यताम् ।
पद्मपत्र तलौ हस्तौ सु प्रसन्ने च लोचने ।
ने दृशं दृश्यते रूपं गतासूनां विशांपते ।
सोच्छ्वासं हृदयं वीर कंपमानं मुहुर्मुहुः ।

वाल्मीकि १०१।२४।२६।

वानर सुषेण श्री राम से कहते हैं कि हे राम आप इतने व्याकुल क्यों हैं आप लक्ष्मण के मुख को देखिये मुख प्रभायुक्त एव सु-प्रसन्न है। हाथ की हथेली तथा पांव के तलुवे कमल पत्र के

---

* एवमुक्तः स रामेण महात्मा हरियूथपः ।
लक्ष्मणाय ददौनस्तः सुषेणः परमौषधम् ।
स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्य समपद्यत । युद्ध का० ९०।२४।

‡ अब्रवीन्मेघ संकाशं सुषेणं नाम वानरम् ।
ताराया: पितरं राजा श्वसुरं भीमविक्रमम् । वाल्मीकि ।

समान लाल हैं। मुख विकृत नहीं है तथा मुख पर श्यामता भी नहीं है। श्वास ठीक चलरहा है और हृदय की गति भी ठीक है। फिर यह कैसे मानलें कि लक्ष्मण की मृत्यु होगई। इस के बाद सुषेण ने हनुमान को संजीवनी, विशल्यकरणी, सावर्ण्य-करणी, तथा संधान करणी औषधियां लाने को दक्षिण के किसी पर्वत पर भेजा था। औषधियों के आने पर उन को कूट कर रस निकालकर लक्ष्मण को सुंघाया गया था। सुंघाने के बाद ही लक्ष्मण की मूर्च्छा (बेहोशी) समस्त वेदना तथा जख्म भरगये थे ॐ। एक बार युद्धक्षेत्र में मेघनाद ने राम और लक्ष्मण दोनों को गहरी चोट पहुँचाई। फल स्वरुप दोनों ही मूर्छित होगये। सुग्रीव आदि सभी यह मान बैठे कि दोनों राजकुमारों की मृत्यु होगई किन्तु उसी समय सुषेण ने उन सबों को आश्वासन दिया, कहा कि चिन्ता की कोई बात नहीं है। और सुग्रीव से कहा कि आप शीघ्र ही संजीवनी और विशल्य करणी औषधियों को मंगाइये। जहां कि पहिले अमृत का मंथन हुआ वहां पर समुद्र के पास मिलेंगी। इन को सपाति और पनस

ॐ ततः संक्षोदयित्वा तामौषधीं वानरोत्तमः।
लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः। ४३।
स शल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुतत्तिष्ठन्महीतलात्। युद्ध का० १०१।४४

आदि नाम के वानर जानते हैं ❀। किन्तु थोड़ी ही देर बाद गरुड़ जाति के महापुरुष आगये और उन्हों ने दोनों राजकुमारों के शरीर पर हाथ फेरा। हाथ फेरने मात्र से शरीर के व्रण (जख्म) भरगये मूर्च्छा जाती रही। यह गरुड़ जाति का महापुरुष बड़ा सुन्दर तथा सुन्दर माला तथा सुन्दर आभूषण धारण किये हुआ था मूर्च्छा हटने पर दाशरथी राम ने इनका परिचय पूछा और यह भी कहा था कि--

यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम्।
तथा भवन्तं मामाद्य हृदयं मे प्रसीदति।

वाल्मीकि युद्ध का० ५०।४३।

अर्थात् जिस प्रकार पिता दशरथ और पितामह अज से मिलकर चित्त प्रसन्न होता है उसी तरह आज आप से मिलकर हो रहा है। अतिरिक्त इसके समुद्र मंथन के समय मिलने वाले धन्वन्तरि भी दक्षिण भारत के ही थे और आयुर्वेद के पूर्ण ज्ञाता भी थे।

वक्तव्य—सुषेण वानर जाति का मनुष्य था प्राचीन युग में इन

❀ जवेन वानराः शीघ्रं संपाति पनसादयः।
अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी।
हरयस्तु विजानन्ती पार्वती ते परमौषधी।

वाल्मीकि युद्ध का० ५०।३१।

का निवास दक्षिण भारत में था। यह वालि का श्वसुर था और आयुर्वेद का विद्वान था। प्राचीन काल में एक सुषेण नाम की संहिता भी थी ॐ। तथा तंत्रान्तरों में इस के प्रयोग आज भी मिलते हैं ❀। सुषेण नाम के अनेक व्यक्ति हुए हैं एक चन्द्रवंशी राजा का भी नाम सुषेण था। परशुराम पांच भाई थे उन में एक का नाम सुषेण भी था। रुक्मवान, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम। किन्तु यह अन्य सुषेण वैद्य नहीं थे। अतः यही अधिक संभव है कि संहिता कार सुषेण वानर सुषेण ही हो।

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध है कि न केवल आर्य अपितु दक्षिण भारत के निवासी वानर रीछ तथा गरुड़ आदि जाति के मनुष्य भी उच्च कोटि के आयुर्वेद विज्ञान के वेत्ता थे, अतः यह समझना कि दिवोदास धन्वन्तरि ने हीं इन्द्र से शिक्षित होकर भारत में आयुर्वेद का प्रचार किया था नितान्त भूल है। आयुर्वेद साहित्य से ज्ञात होता है कि धन्वन्तरि के अतिरिक्त भारतीयों ने इन्द्र को तीन बार आयुर्वेद का गुरू

ॐ सुषेण संहिता चैव रसरत्नप्रदीपकः। चिकित्सा रत्न भूषण (हस्तलिखित)

❀ अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके वमथौ तथा।
क्षये मन्दाग्न्या वुदरे कुष्ठे नेत्रामयेऽपिवा।
व्रणेच मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत्। सुषेण संहिता।

और भी बनाया है। इसका वर्णन इस प्रकार है। चरक-संहिता में लिखा है कि एक बार ऋषि भरद्वाज अंगिरा जमदग्नि और वशिष्ठ आदि हिमालय पर्वत पर एकत्रित हुये। सब ने भरद्वाज को अपना प्रतिनिधि बनाकर तिब्बत में इन्द्र के पास आयुर्वेद पढ़ने को भेजा था ‡। इन्द्र से अध्ययन के बाद भरद्वाज से पुनर्वसु आत्रेय ने और आत्रेय से अग्निवेश जतुकर्ण क्षारपाणि भेल पराशर हारीत ने शिक्षा पाई थी। चरक संहिता चि० स्था० अ० १ पा ४ में लिखा है कि भृगु अंगिरा अत्रि वशिष्ठ कश्यप अगस्त्य आदि ऋषियों ने इन्द्र के पास जाकर आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी *। काश्यप संहिता में आयुर्वेद की उत्पत्ति के संबन्ध में लिखा है, कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ और भृगु ने आयुर्वेद को इन्द्र से पढ़ा और इन्हों ने अपने पुत्र तथा शिष्यों को पढ़ाया था ☺।

‡ स शक्र भवनंगत्वा सुरर्षिगण मध्यगम्।
ददर्शबल हन्तारं दीप्यमान मिवानलम्।
सोऽभिगम्य जयाशीर्भि रभिनन्द्य सुरेश्वरम्।
तस्मै प्रोवाच भगवानायुर्वेदं शतक्रतुः। च० सू० १।

* भृगु अंगिरा अत्रि वशिष्ठ कश्यपागस्त्य पुलस्त्य वामदेवा।
सित गौतम प्रभृतयो महर्षयः। च० चि० १।४।६३।

☺ इन्द्र ऋषिभ्यश्चतुर्भ्यः कश्यप वशिष्ठात्रि भृगुभ्यः।
ते पुत्रेभ्यः शिष्येभ्यश्च प्रददुः। काश्यप संहिता पृ० ४२।

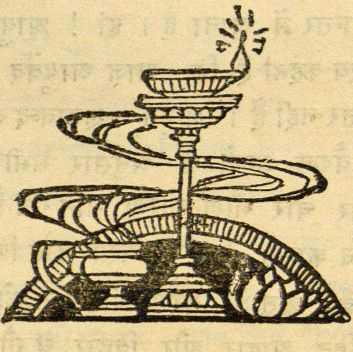
उपरोक्त तीनों हीं प्रसंगों में आयुर्वेद की शिष्य परंपरा का क्रम वही है जो कि दिवोदास धन्वन्तरि ने कहा है कि--- ब्रह्मा से दक्ष, दक्ष से अश्विनीकुमार और अश्विनी कुमार से इन्द्र वताया है।

वस्तुत: वात सीधी साधी है उत्तर भारत में हिमालय पर्वत पर रहने वाले ऋषि मुनियों को दुर्गम स्थान होने पर भी समीप पड़ता था। इस लिए समय समय पर उन से कुछ सीख लिया करते थे। जिन में आत्रेय का तो पढ़ने के बाद भी पढ़ाने में भी कैलाश के आस पास का प्रदेश ही निवास स्थान रहा है चरक संहिता इसकी साक्षी है। अस्तु।

किन्तु परिवर्तन या पतन के वाद भी तिव्वत और भारत की पृथाओं में आज भी बहुत समानता है जिन का लिखना विषयान्तर में जाना है। हां ! आयुर्वेद के संवन्ध में इतना अवश्य कहना है कि—आज आयुर्वेद के सिद्धान्तों में भी विशेष अन्तर नहीं हैं। श्रीयुत प्रणवानन्द जी ने लिखा है कि "तिव्वती वैद्यक ग्रन्थों के अनुसार सभी वीमारियों के तीन प्रधान और चार गौण कारण माने गये हैं। काम क्रोध और मोह प्रधान कारण हैं जो क्रमशः वात पित्त और श्लेष्म से उत्पन्न होते हैं। ऋतु जो गरमी और शीत को उत्पन्न करते हैं, दुष्ट ग्रह दूषित आहार और विहार, ये गौण कारण माने गए हैं। चिकित्सा में एक सहस्र से अधिक प्रयोग हैं किन्तु भयंकर रोगों में औषधि देवता (मेनल्हा) का पूजा पाठ भी

किया जाता है।" (कैलाश मानसरोवर पृ० २१५) यह कुछ वर्तमान तिब्बती आयुर्वेद का दिग्दर्शन उपस्थित किया है इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों देशों के आयुर्वेद में कितनी समानता है। चिकित्सा के साथ या विना चिकित्सा के भारत में भी पूजा पाठ होता ही है।

इति तृतीय अध्याय समाप्त



अथ चतुर्थ अध्याय प्रारंभ

इन्द्र का परिचय—

हम पहिले कहचुके हैं कि उत्तर पांचाल राज दिवोदास की भगिनी अहल्या ऋषि गौतम की स्त्री थी। गौतम का पुत्र शतानन्द भी ऋषि तथा राजा जनक (सीरध्वज) का पुरोहित था। और ऋषि गौतम का आश्रम भी जनकपुर के समीप था। और जनकपुर का प्राचीन नाम जयन्तपुर था इसको विकुक्षि के छोटे भाई निमि ने वसाया था †। देवराज इन्द्र ने ऋषि गौतम का वेश वनाकर अहल्या से जार कर्म किया ‡। जब गौतम को इस जघन्य कर्म का पता लगा तो गौतम ने क्रुद्ध होकर इन्द्र को अंडकोष रहित होने का शाप दिया। परिणाम स्वरूप तत्काल ही इन्द्र के अंडकोष भूमि पर गिर पड़े ¶। ब्रह्माण्ड पुराण में

---

† अनुजस्य विकुक्षेस्तु निमेर्वंशं निवोधत।
योसो निवेशयामास पुरंदेव पुरोपमम्।
जयन्तमिति विख्यातं गौतमस्याश्रमान्तिकम्। ब्रह्माण्डपु०३।६४

‡ अथ दृष्ट्वा सहस्राक्षं मुनिवेषधरं मुनिः। वाल्मीकि।

¶ दुष्कर्तारं सुरा संपन्नो रोषाद्वचमब्रवीत्।
अकर्तव्यमिदं यस्माद्विफलस्त्वं भविष्यति।
पेततुर्वृषणौ भूमौ सहस्राक्षस्यतत्क्षणात्। वाल्मीकि बालकां० ४८।

स्पष्ट कहा है कि गौतम ने इन्द्र के शिश्न और अंडकोष काट कर डाल दिये थे ।

इन्द्रस्य हि धर्मज्ञ शिश्नं सवृषणं पुरा ।

ऋषिणा गौतमेनोर्व्यां क्रुद्धेन विनिपातितम् ॥

ब्रह्माण्ड पुराण २।२७।२३।

ऐसा करके गौतम ने इन्द्र को जीवन भर के लिये जार कर्म से मुक्त कर दिया था । और साथ ही अपनी पत्नी अहल्या को भी एक सहस्र वर्ष (२ वर्ष ९ मास १० दिन) के के लिये भूमि शयन एकान्तवास (कैद तन्हाई) का दण्ड दिया था । इस घटना का उल्लेख कामशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य वात्स्यायन ने अपने काम सूत्र में और बौद्धाचार्य अश्वघोष ने बुद्धचरित में भी किया है ॐ । उधर इन्द्र ने स्वर्ग में जाकर देवों से झूंठ बोला और कहा कि गौतम ऋषि के तप में विघ्न डालकर मैं ने देवों का कार्य साधन करना चाहा था किन्तु गौतम ने क्रुद्ध होकर मेरी जननेन्द्रिय और अंडकोष काट लिये हैं ॐ । इस समाचार को

ॐ देवराजश्याहल्यां अतिवलश्च कीचको द्रौपदीं अपरेचान्ये च वहवो दृश्यन्ते कामवशगा विनष्टाः । कामसूत्र । २।४२।

कामं परमितिज्ञात्वा देवोऽपि हि पुरन्दरः ।

गौतमस्य मुनेः पत्नीमहल्यो चकमेपुरा । बुद्धचरित भाग १।४।७३

ॐ कुर्वता तपसो विघ्नं गौतमस्य महात्मनः ।

अफलोस्मि कृतस्तेन क्रोधात् सा च निराकृता । वालकां० ४९ ।

सुनकर अग्नि आदि प्रमुख देवता इन्द्र को साथ लेकर पितृ देवों के पास गये और साथ में एक मेष (मेंढा) भी लेते गये। पितृ देवों के पास पहुंच कर आद्योपान्त समाचार सुनाया और कहा कि इस मेष के अंडकोषों को काट कर इन्द्र के लगादीजिये देवों की प्रार्थना को पितृ देव ने स्वीकार करके मेष के अंडकोषों को निकाल कर इन्द्र के अंडकोषों के स्थान पर लगादिये † । इन्द्र की कृपा से अहल्या का जीवन तो नष्ट हो ही गया था किन्तु सौभाग्य से घटना के कुछ दिनों वाद श्री राम तथा लक्ष्मण ने जनकपुर जाते समय गौतम के आश्रम को देखा विश्वामित्र ने आदि से अन्त तक घटना का वर्णन किया श्री रामचन्द्र जी ने पति पत्नी से वातें क के क्षमा आदि मंगवा कर गौतम का अहल्या से समझौता करा दिया। इस प्रकार श्री रामचन्द्र की कृपा से उनका दाम्पत्य जीवन पुनः सुखी एवं सरस वनगया। इसी को रामायण ने अहल्या उद्धार नाम से कहा है। स्मरण रहे इस घटना के वाद ही श्री रामजी का विवाह होगया है विवाह के वाद वारह वर्ष तक श्री राम अयोध्या में और चौदह वर्ष तक वन में रहे, इस के वाद श्री राम का राज्याभिषेक हुआ इस अभिषेक महोत्सव में दिवोदास धन्वन्तरि के पुत्र प्रतर्दन सम्मिलित हुए थे। इस प्रकार अहल्या उद्धार की घटना से

---

† उत्पाद्य मेष वृषणौ सहस्राक्षे न्यवेशयत्। वाल्मीकि वा०का०६४

राज्याभिषेक तक २६ वर्ष का अन्तर होजाता है । राज्याभिषेक के अवसर पर प्रतर्दन के सम्मिलित होने का स्पष्ट अर्थ है कि उस समय दिवोदास राज्य त्याग चुके थे और आश्रम वासी बन कर शिष्यों को आयुर्वेद की शिक्षा देकर देश की सेवा कर रहे थे। और दिवोदास के साथी राजा दशरथ १४ वर्ष पूर्व १७८ एकसौ अठत्तार वर्ष की आयु में दिवंगत होचुके थे। यह हम इस लिये कहते हैं कि श्रीराम के विवाह के समय दशरथ ने विश्वामित्र से अपनी आयु साठहजार वर्ष की बताईहै "षष्टि वर्ष सहस्त्राणि जातस्य मम कौशिक"। (वाल्मीकि बाल कां० २०।१०। जिस के अहर्वै संवत्सरः के अनुसार १६६ वर्ष ८ मास होते हैं। विवाह के १२ वर्ष बाद वनवास के समय दशरथ की मृत्यु हुइ थीं इस तरह १७८ वर्ष होजाते हैं। अस्तु।

इन्द्र की डाढ़ी मूंछ—यह लिखना भी रुचिकर होगा कि वेदों में इन्द्र की डाढ़ी मूंछ, शिर के बाल और उस के घोड़ों का वर्ण हरा लिखा है । "हिरीमशो हिरीमान" (ऋ० १०।९६।५) हिरीमशः हरितश्मश्रुः, हिरीमान् हरिताश्वो। (सायण) "हरिश्मशारुः हरिकेश आयसस" (अथर्व २०।३१।३।) हरिश्मशारुः हरितश्यश्रुः, हरिकेशः हरितवर्ण केशोपतः (सायण) "हरिकेश यज्वभिः (अथर्व २०।३०।५) " हे हरिकेश हरिद्वर्ण केशोपेत (सायण) । हरे घोड़ों का उल्लेख कालीदास ने भी किया है । "हरिं विदित्वा हरिभिश्चवाजिभिः" (रघुवंश) हरिभिर्हरिद्वर्णैः (टीकामल्लिनाथ) किन्तु

स्मरण रहे यह डाढ़ी मूंछ, केश अथवा घोड़े जन्म से हरे वर्ण के नहीं होते थे। वल्कि इन्द्र हरे रंग से रंगलिया करते थे। आज भी लाल काले खिज़ाव होते हैं।

विरजा से संबन्ध—ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि देवराज इन्द्र की ऋक्ष की स्त्री विरजा से मित्रता थी। फलस्वरूप वालि का जन्म हुआ था † । और इसी विरजा से देवजाति के सूर्य का भी संवन्ध था इस से वालि के भाई सुग्रीव का जन्म हुआ था ‡ । इसका समर्थन तुलसीदास जी ने भी किया है। कि "इन्द्र अंश ते बालि भा सूर्य अंश सुग्रीव" (तुलसीकृत रामायण) वानर कुंजर की पुत्री अंजना थी वह वानर केसरि की स्त्री थी अंजना से वायु नामक देवता का संवन्ध था इस से प्रसिद्ध राम भक्त हनुमान का जन्न हुआ था ₰। इस घटना का वर्णन

---

† चकमेंतां महेन्द्रस्तु दृष्ट्वा वै प्रिय दर्शनाम्।
तेन तस्यां सुतो जातो वाली विक्रम पौरुषः।
विरजायां महेन्द्रेण महेन्द्र सम विक्रमः। ३।७।२१४।

‡ तथा स्वांशो भानुना वै तस्यामेव यथा विधि।
रहस्युत्पादितः पुत्रः सुग्रीवो हरियूथपः। ब्रह्मा०पु०।३।७।२१५।

₰ केसरि कुञ्जरस्याथ सुतां भार्यामविन्दत।
अंजना नाम सुभगा गत्वा पुंसवने शुचिः।
पर्युपासते च तां वायुर्यौवना देव गर्विताम्।
तस्यां जातस्तु हनुमान वायना जगदायुना। ब्र०पु०।३।७।२२४।

कवि वाल्मीकि ने बड़े सुन्दर शब्दों में किया है।

विचित्र माल्याभरणा कदाचित् क्षौमधारिणी।
अचरत् पर्वतस्याग्रे प्रावृडंबुद सन्निभे।
तस्याः वस्त्रं विशालाक्ष्याः पीतं रक्तदशं शुभम्।
स्थितायाः पर्वतस्याग्रे मारुतोपहरच्छनैः। १२।
स ददर्श ततस्तस्या वृत्तावूरू सुसंहतौ।
स्तनौच पीनौ सहितौ सुजातं चारुचाननम्। १३।
तां बला दायत श्रोणीं तनुमध्यां यशस्विनीम्।
दृष्ट्वैव शुभ सर्वांगीं पवनः काममोहितः। १४।
स तां भुजाभ्यां दीर्घाभ्यां पर्यष्वजत मारुतः।
मन्मथाविष्ट सर्वांगोगतात्मा तामनिन्दिताम्। किष्कि०का०६६

अर्थात् एक समय केसरि की स्त्री अंजना विचित्र माला तथा अनेक प्रकार के क्षौम वस्त्रों (अलसीसे निर्मित) को धारण कर के पर्वत पर टहल रहीं थी। इस के बड़े बड़े तथा सुन्दर नेत्र थे। सुन्दर मुख था गोल गोल ऊरू (जांघें) थीं कठोर स्तन तथा पतली कमर थी। अकस्मात् वायु ने अंजना का वस्त्र भी शरीर से हटा दिया था। बस फिर क्या था पवन देव काम पीड़ित होगये और अंजना को बलात् दृढ़ आलिंगन करलिया अंजना ने कहा भी कि आप कौन हैं जो पतिव्रत धर्म को नष्ट करना

चाहते हैं किन्तु सब व्यर्थ फलस्वरूप हनुमान का जन्म हुआ। हनुमान के मतिमान श्रुतिमान केतुमान और धृतिमान चार भाई और थे जो कि अपने पिता केसरि से ही उत्पन्न हुए थे। उन्हों ने विवाह किया था और गृहस्थ भोगा था हनुमान आजीवन ब्रह्मचारी रहे थे। इसी प्रकार वानर कनकविन्दु की स्त्री से देव जाति के अग्नि नामक पुरुष का संवन्ध था इस से नल नामक वानर का जन्म हुआ था ❀। यह नल शिल्पी था इसीने समुद्र का पुल बांधा था। उक्त घटनाओं के देखने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उस युग में देवलोक में विज्ञान तो निःसन्देह बहुत ऊंचा था न केवल आयुर्वेद विज्ञान अपितु शस्त्रास्त्र विज्ञान भी और यह दीर्घ काल तक फला फूला यही कारण है कि समय समय पर भारतीयों ने आयुर्वेद इन्द्र से सीखा, और महाभारत काल में पांडव अर्जुन ने भी पांच वर्ष इन्द्र के घर पर ही रहकर शस्त्रास्त्र सीखे थे तथा चित्रसेन गन्धर्व से नृत्यकला भी सीखी थी। दूसरे यह भी कि देवों का और भारतीय मानवों का परस्पर घनिष्ट संवन्ध भी रहता था इसी कारण देवासुर संग्रामों में ककुत्स्थ दशरथ ययाति आदि राजाओं ने असुरों के विरोध में देवों की सहायता भी की थी। प्राचीन युग में ऋषियों से समस्त

❀ अग्निपुत्रश्च बलवान्नलः परमदुर्जयः।
क्षेत्रे कनक विन्दोस्तु जातो वानर पुंगवः। ब्रह्मा०पु० ३।७।२२६

हिमालय छाया हुआ रहता था दोनों देशों (भारत और तिब्बत) की सीमा मिली रहने के कारण देवर्षि मनुष्यर्षियों का एक ही निवास स्थान रहता था। किन्तु देवों का चरित्र भारतीय दृष्टिकोण से कुछ नीचा था। अथवा यों कहिये हमारी तथा देवों की सभ्यता तथा संस्कृति में कुछ अन्तर था। देवों में स्वतंत्र जीवन था। विवाहित जीवन कम था। इन्द्र, वृहस्पति विष्णु, वरुण, कुबेर तथा महादेव आदि ही प्रमुख देवता सपत्नीक रहते थे। अन्यथा वहां का वैवाहिक या दाम्पत्य जीवन बन्धनों से मुक्त था। यह हमारा कथन निम्नलिखित घटना से अधिक स्पष्ट होजायगा।

एक वार रावण दिग्विजय के लिये लङ्का से चला और कैलाश पर्वत पर छावनी डालदी रात का समय था वहां रावण ने देखा कि स्वर्ग की प्रसिद्ध अप्सरा (वेश्या) रंभा जारही है रावण ने मोहित होकर उसको पकड़ लिया। किन्तु रंभा के इस वाक्य ने कि मैं आप की पुत्र वधू हूं रावण को विस्मय में डाल दिया। रावण ने रंभा को छोड़ दिया और पूछा कि यह कैसे? तब रंभा ने कहा कि नलकूवर कुबेर के पुत्र हैं और कुबेर और आप मौसेरे भाई हैं। मैं नल कूवर के वुलावे पर उनके घर जारही हूं। अतः आपकी पुत्र वधू हूं। इस पर रावण ने रंभा से कहा कि—

स्नुषास्मि यदवोचस्त्वमेक पत्नीष्वयंक्रमः।

देवलोक स्थितिरिय सुराणां शाश्वतीमता ।३६।
पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्री परिग्रहः ।

रावण ने कहा ! हे रंभा तुमने जो यह कहा है कि मैं तुम्हारी पुत्र वधू हूं यह असत्य है, इसलिये कि यह तो एक स्त्री और एक पुरुष रखने वालों का क्रम है । किन्तु देवलोक में रूदैव की यह प्रथा रही है कि पुरुषों की एक स्त्री नहीं होती और अपसराओं के एक पति नहीं होते । अर्थात् वहां दांपत्य जीवन ही नहीं है । अस्तु । अव हम इस विषय को यहीं समाप्त करके आगे वढ़ेंगे । यह तो रही प्राचीन युग की वात अव देखिये वर्तमान युग की ।

स्वर्ग या तिव्वत में आज भी रूपान्तर से यह पृथ जीवित है । तिव्वत में वहुपतिक विवाह की पृथा है । तिव्वत में वड़े भाई का विवाह होता है, वही स्त्री शेष सव भाइयों की स्त्री वनती है । जो इस नियम का उल्लंघन करता है उसका वहिष्कार होता है हेय समझा जाता है । लद्दाख में भी यही पृथा है इसका कारण यह है कि यह भी पहिले तिव्वत में ही था । लद्दाख तथा गिलगित को जम्मू के राजा जोरावरसिंह ने १८३५ई० में जीत कर काश्मीर राज्य में मिला लिया था । और यही वहु-पतिक पृथा किन्नर प्रदेश (रामपुर वुशहर पंजाव) में है इस प्रदेश की सीमा तिव्वत से मिलरही है, किन्नरों की गणना

देवों में होती थी †। अतः किन्नरों में भी वही प्रथा चली आरही है। किन्नरी गायन विद्या में बड़ी प्रवीण होती थीं, राजा रघु के दिग्विजय में कवि कालीदास ने भी किन्नरों से गीत गवाये हैं। कवि वाल्मीकि ने भी इन गानों का उल्लेख किया है ‡। किन्नरी सुन्दरि भी होती थीं और आज भी हैं।

किन्नर प्रदेश में —— कुछ दिन हुए किन्नर प्रदेश में शीर्षक से एक लेख किसी दैनिक पत्र में निकला था उसका सारांश इस प्रकार है—"हिमाचल प्रदेश की यात्रा करते हुए अशोक आश्रम कालसी के व्यवस्थापक श्री धर्मदेव शास्त्री श्री छगिन पारिख के साथ १६ मई सन ५० ई० को किन्नर प्रदेश के केन्द्र स्थान चीनी पहुंचे। चीनी शिमला से ६ हजार फुट है। किन्नर देश तिब्बत की सीमा के साथ मिलता है। यहां के निवासियों में बहु पति प्रथा है। सब भाइयों की एक ही पत्नी रहती है। परिणाम-स्वरूप अनेक स्त्रियां बिना विवाह के रहती हैं। सर्दियों में ये लोग अपनी भेड़ बकरियों को लेकर कालसी बिलासपुर और कालका में उतर आते हैं। किन्नर देश में अशिक्षा और देवी देवताओं की पूजा अधिक है।"

---

† विद्याधराप्सरो यक्ष रक्षो गन्धर्व किन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः। अमरकोश।

‡ किन्नराः मदनेनार्ताः रक्ता मधुर कंठिनः। उत्तर का० २६।७।

इन्द्र पद—--यह भी स्मरण रहे इन्द्र नाम नहीं था बल्कि पद था नाम तो इन्द्रों के--रोचन, सत्यजित, त्रिशिख, विभु और पुरन्दर आदि थे। यही पुरन्दर दिवोदास के गुरू तथा अहल्या, विरजा के मित्र थे।

इस पद को भोगने वाले नहुष, ययाति रजिपुत्र तथा दैत्यराज बलि अन्धकासुर और मुर आदि अनेक हुए हैं। इसी आधार पर नहुष के भाई रजि ने इन्द्र से कहा था कि -

यदि दैत्यगणान् सर्वान् जित्वा वीर्येण वासव ।
इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे ॥

ब्रह्माण्ड पुराण १ ८।२।२

यदि तुम इन्द्र पद अर्थात देवों का शासन मेरे लिये छोड़दो तो मैं इस देवासुर सग्राम में तुम्हारा सहायक बनूंगा अन्यथा नहीं। प्रसग वश मैं यह भी स्पष्ट करदेना चाहता हूं कि केवल इन्द्र पद ही नहीं अपितु वरुण कुवेर बृहस्पति आदि सब पद ही थे। शास्त्रों में व्यक्तियों का नहीं पदों का ही वर्णन किया है और इसी पद के आधार पर देवता अमर कहलाते थे या हैं। इसका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में भी है- वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त के समय में पहिले वैश्रवण (कुवेर) की मृत्यु होगई तब शक्र ने एक दूसरे देवता को उनके राज्य का भार प्रदान किया।

(कृष्ण धर्म जातक हिन्दी)

दिवोदास धन्वन्तरि का समय !

हम पहिले कह चुके हैं कि पांचाल नरेश दिवोदास की बहिन अहिल्या ऋषि गौतम की स्त्री थी। सतानन्द ऋषि गौतम का पुत्र राजा जनक का पुरोहित था ❀। वशिष्ठ दशरथ के पुरोहित थे। सतानन्द और वशिष्ठ ने श्री राम जी का विवाह संस्कार कराया था। श्री रामचन्द्र ने अहिल्या का उद्धार किया था। ऋषि विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण जनकपुर गये थे। वहां सीरध्वज नामक जनक की पुत्री सीता से विवाह हुआ था। विवाह के वाद परशुराम से राम का विवाद भी हुआ था ✽। सीरध्वज का भाई कुशध्वज संकाश्य (संकिसा जि० फरुक्खावाद) का राजा था। विश्वामित्र का पुत्र सुश्रुत ॐ धन्वन्तरि का शिष्य था। और दिवोदास धन्वन्तरि का पुत्र प्रतर्दन श्री रामचन्द्र के राज्याभिषेक महोत्सव में सम्मिलित हुआ था। श्री रामचन्द्र

❀ ततः प्रभाते जनकः कृतकर्मा महर्षिभिः।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः शतानन्दं पुरोहितम्। वाल्मी० वा० कां० ७०।१
शतानन्दस्तु गौतमात्। भागवत ९।२१।३०।

✽ भार्गवं जामदग्न्येयं राजा राजविमर्दनम्। वाल कां० ७४।१७।

ॐ जावालि सुश्रुतस्तथा। महाभारत अनुशासन पर्व ४।
सुश्रुतः कौशिका राजन् तथान्ये सैंधवायनाः। हरिवंश।

जी ने प्रतर्दन का भारी आभार मानते हुए उसे विदा किया था †
और काशिपति दिवोदास ‡ और कौसल्या के पिता भानुमन्त ||
दशरथ की यज्ञ के अवसर पर उपस्थित हुये थे अतः ये सभी
समकालीन थे। इमके साथ हमें यह भी ज न लेना है कि दशरथ
के श्वसुर केकय नरेश अश्वपति और दशरथ के साले युधाजित्
अंगदेश के राजा रोमपाद (जोकि दशरथ के प म मित्र थे) वानर
वालि सुग्रीव हनुमान वालि का श्वसुर सुषेण आदि सभी
दिवोदास अथवा श्री रामचन्द्र के समकालीन थे। इसके बाद
अब हमको यह जानन है कि श्री रामचन्द्र का समय या युग
क्या था, रामचन्द्र का समय ज्ञात होने पर दिवोदास का स्वयं
होजायगा क्योंकि वे राम के समकालीन थे।

महाभारत में लिखा है कि—

संध्यां शे समनु प्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च।

---

† प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत्। १५
दर्शिता भवता प्रीतिर्दर्शितं सौहृदं परम्।
तद् भवानद्य काशेयपुरीं वाराणसीं व्रज।
वाल्मीकि उत्तर कां० ३८।१६।

‡ तथा काशिपतिं स्निग्धं सततं प्रियवादिनम्।
सद्वृत्तं देवसंकाशं स्वयमेवानयस्वह। वाल्मीकि बा-कां० १३।२३

|| तथा कोसल राजानं भानुमन्तं सुसत्कृतम्। बाल कां० १३।२६।

अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः। ८५ ॥

ततो रक्षपतिंघोरं पुलस्त्य कुल पांसुनम्।

हरिष्ये रावणंरौद्रं सगणं लोक कंटकम् ॥ शान्तिपर्व ३३६ ॥

त्रेता और द्वापर युग की सन्धि में दशरथ के घर श्री रामचन्द्र का जन्म हुआ और श्री राम ने रावण को मय उस के साथियों के मारा।

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है—

चतुर्विंशे युगे रामो वशिष्ठेन पुरोधसा।

सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः। ३।७३।९२।

त्रेता युग के चौबीसवें भाग में ऋषि वशिष्ठ के साथ श्रीराम का जन्म हुआ यह रावण के वधार्थ सतवां अवतार था।

हरिवंश में लिखा है—

चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्र पुरःसरः।

राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः। हरिवंश ४।४१।

ब्रह्मपुराण १०४।११।

त्रेता युग के चौबीसवें भाग में विश्वामित्र और श्रीराम उत्पन्न हुये। महाभारत में लिखा है—

त्रेता द्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतांवरः।

असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्ष चोदितः। आदिपर्व २।३।

त्रेता और द्वापर युग की सन्धि में शस्त्र विज्ञान में श्रेष्ठ भार्गव

राम परशुराम) का जन्म हुआ। उक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि राम परशुराम वशिष्ठ रावण विश्वामित्र आदि त्रेता युग का चौबीसवां भाग अर्थात् त्रेता और द्वापर युग की सन्धि में उत्पन्न हुये थे। अतः इसी आधार पर हम बल पूर्वक कहने का साहस करते हैं कि दिवोदास धन्वन्तरि का जन्म त्रेता और द्वापर युग की सन्धि का था।

वक्तव्य—इस के बाद यह कहना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि रावण जमदग्नि परशुराम और विश्वामित्र आदि अनेक हुए हैं उन सब को एक ही मान लेना भारी भूल है। इसी भूल के कारण पुराण तथा इतिहास को असत्य एवं कपोल कल्पित कहा जाने लगा है। वस्तुतः भूल यह होती है कि मूल पुरुष के बाद में होने वालों को भी वही मूल पुरुष मान लिया जाता है। बस यही गड़बड़ का कारण बनता है। एक रावण त्रेता के तीसरे भाग में और दूसरा त्रेता के चौबीसवें भाग मे होता है तो भला इन दोनों का एक ही होना कैसे संभव है। विद्वानों का कर्तव्य है कि संगति मिलाने का प्रयत्न करें और वास्तविकता को जनता के सामने लावें ताकि हमारे गौरव पूर्ण अतीत के इतिहास का भविष्य उज्वल हो। यद्यपि इस दिशा में पुराण पण्डित पार्जीटर आदि पश्चिमी विद्वानों ने भारी परिश्रम किया है। एतदर्थ हम उन के प्रशंसक भी हैं किन्तु उनके पक्षपात पूर्ण दृष्टिकोण तथा अधूरा प्रयत्न होने के कारण समस्या का पूर्णतया

समाधान नहीं हो सका है । अभी वहुत कुछ करना बाकी है । इसी विचार-धारा के अनुसार उपरोक्त नामों के संवन्ध में कुछ स्पष्टीकरण करना आवश्यक समझता हूं ।

रावण— ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है !

त्रेतयुगमुखे राजा तृतीये सम्बभूवह ।
तस्येडविला कन्या ऽलंबुषा गर्भ संभवा ॥
तस्यां जातो विश्रवास्तु पौलस्त्य कुलवर्धनः ॥ ३।६१॥

अर्थात् - त्रेता युग के तीसरे भाग में तृणविन्दु नाम का राजा हुआ । इडविला नाम की पुत्री ऋषि पुलस्त्य की स्त्री थी, उस से विश्रवा का जन्म हुआ । विश्रवा की चार स्त्रियां थीं उन में एक देववर्णिनी देव गुरू वृहस्पति की पुत्री थी ❀ उस से कुवेर का जन्म हुआ । दूसरा राक्षस माली की पुत्री कैकसी नाम की स्त्री थी, इस से रावण का जन्म हुआ । इस की स्त्री मन्दोदरी मय दानव की पुत्री थी । कुंभकरण की स्त्री वृत्रज्वाला दैत्यराज विरोचन (प्रह्लाद का पुत्र) की पुत्री थी ♁ और विभाषण

❀ वृहस्पतिः वृहत्कीर्तिः देवाचार्यस्तु कीर्तितः ।
कन्या तस्योपयेमे स नाम्नावै देववर्णिनीम् । ब्रह्माण्ड पुराण ।

♁ विरोचनस्य दौहित्री वृत्रज्वालेतिनामतः
तां भार्यां कुंभकर्णस्य रावणः समकल्पयत् ।

की स्त्री सरमा गन्धर्वराज शैलूष की कन्या थी † । उपरोक्त पाठ में यह वताया है कि रावण त्रेता के तीसरे भाग में हुआ था। और इसकी पुष्टि में यह भी प्रमाण है कि रावण के भाई कुंभकर्ण की स्त्री वृत्रज्वाला दैत्यराज विरोचन की पुत्री थी। अतः यह रावण दाशरथी राम के समकालीन से भिन्न था।

दूसरा रावण--एक रावण नेदिग्विजय में राजा दुष्यन्त(चन्द्रवंशी) राजा गाधि और राजा मरुत ‡ से आत्म समर्पण कराया था। रावण का कहना था कि युद्ध करो या आत्म समर्पण उक्त तीनों ने युद्ध न करके आत्मसमर्पण किया था । इस के वाद रावण सूर्यवंशी अनरण्य के पास अयोध्या में गया यही प्रस्ताव अनरण्य के सामने रक्खा अनरण्य ने क्षात्र धर्म के अनुसार "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।" (गीता) का अनुसरण करते हुये युद्ध किया और वीरगति को प्राप्त हुआ इसके वाद रावण कार्तवीर्यार्जुन (सहस्त्रवाहु) के पास माहिष्मती

---

† गन्धर्व राजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ।
सरमा नाम धर्मज्ञां लेभेः भार्यां विभीषणः । वाल्मी॰उत्त-का॰१२

‡ राजा मरुत उस समय उशीरवीज पर्वत पर यज्ञ कर रहा था उशीरवीज पर्वत हरिद्वार और वद्रिनाथ के मार्ग में पड़ने वाला कोई स्थान है। पांडव जव गन्धमादन (वद्रीनाथ) गये थे तव यह मार्ग में पड़ा था। (महाभारत वन पर्व)

में गया वही अभ्यस्त प्रस्ताव कार्तवीर्यार्जुन के सामने भी रक्खा उसने रावण को बांध कर डालदिया और फिर ऋषि पुलस्त्य ने आकर कहा सुना तब रावण को छोड़ दिया।

सहस्त्रवाहु बड़ा प्रतापी राजा था. यह ऋषि दत्तात्रेय का शिष्य था, इस के भय से समीप वासी पाताल-वासी असुर तथा नाग थर थर कांपा करते थे नाग कभी सर उठा कर नहीं चलते थे [१]।

राक्षसों और नागों का इसने पूरी तरह से दमन किया था। जिस प्रकार मुहम्मद गजनी भारत के हिन्दुओं को दास (गुलाम) बनाकर गजनी लेगया था उसी प्रकार यह भी पाताल वासी नागों को दास बना कर माहिष्मती में ले आया था।

सहि नागान् मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः।
कर्कोटक सुतं जित्वा पुर्यां तस्यां न्यवेशयत्। मत्स्य ४३।२९।

सहस्त्रवाहु के लिये लिखा है कि इसने ८५ हजार वर्ष राज्य किया था।

पंचाशीति सहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः।

"किन्तु अहोरात्रे बै संवतसरः" (शतपथ) के अनुसार २३६ वर्ष १ मास होता है। अन्त में इस को भार्गव परशुराम ने मारा था।

माहिष्मती———यह नगरी प्राचीन काल में बड़ी प्रसिद्ध थी।

---

[१] तदानिश्चल मूर्द्धानो भवन्ति च महोरगाः। मत्स्य पु० ४३।३६।

इसका उल्लेख हमारे इतिहास के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में भी मिलता है--

"माहिस्सती अवन्तीनां सोवीरानां च रोरुकम्।

प्राचीन युग में इस की स्थापना नर्मदा नदी के तट पर हुई थी समृद्धशाली नगरी जीर्ण-शीर्ण सही यह आज भी इन्दौर राज्य में नर्मदा के ही तट पर है। आज इस का महेश्वर नाम है जन संख्या छः हजार से ऊपर है और सन १८१८ ई० तक इन्दौर राज्य की राजधानी भी यहीं थी।

समय ——- हम पहिले कह चुके हैं कि सहस्रबाहु ऋषि दत्तात्रेय का शिष्य था और दत्तात्रेय दसवें त्रेता युग में हुए हैं।

त्रेतायुगेतु दशमे दत्तात्रेयो बभूवह। ब्रह्माण्ड ३।७३।८८।

मत्स्य पुराण में दसवें त्रेता युग के स्थान पर प्रथम त्रेता युग लिखा है। "त्रेता युगे तु प्रथमे दत्तात्रेयो बभूवह।" मत्स्यपु० ४७।२४२। यह पाठ अशुद्ध है। उक्त प्रमाण के आधार पर दुष्यन्त गाधि अनरण्य सहस्रबाहु मरुत् दत्तात्रेय और रावण सम-कालीन थे तथा दसवें त्रेता युग के थे। अनरण्य श्री रामचन्द्र जी से ३६ पीढ़ी पूर्व हो चुके हैं यदि प्रति सौ वर्ष पर तीन पीढ़ी भी मानलें तो बारह सौ वर्ष का अन्तर होता है।

तीसरा रावण—— एक रावण सूर्य वंशी मांधाता के समय में भी था। मांधाता सप्तद्वीपपति, चक्रवर्ती राजा था। महा-

भारत में लिखा है कि इस को देवराज इन्द्र का आध आसन मिलता था † । इसका समर्थन बौद्धाचार्य अश्वघोष ने भी किया है ⸸ । मांधाता ने गांधार (कन्धार) देश तक जीता था । और कैलाश मानसरोवर के पास जाकर तप भी किया आज भी वहां का स्थान मांधाता पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है भागवत में लिखा है कि मांधाता के भय से रावण आदि दस्यु उद्विग्न अथवा भयभीत रहा करते थे ※ । यह मांधाता त्रेता के पन्द्रहवें भाग में हुआ है ।

पंचमः पंचदश्यां च त्रेतायां संबभूवह ।
मांधाता चक्रवर्ती तु तदोत्तंक पुरःसरे । मत्स्यपु० ४७।२४३ ।

सूर्यवंश की वंशावली मांधाता को भागवत और विष्णुपुराण में अनरण्य से पहिले लिखा है जब कि वाल्मीकि ने अनरण्य को पहिले लिखा है । मैं वाल्मीकि की बात पर विश्वास करता हूं इस लिये कि चन्द्रवंश की पौरव वंश की वंशावली में उक्त दोनों ने दुष्यन्त को मतिनार = अन्तिनार से बाद में रक्खा है । और

---

† शक्रस्यार्धासनं राजन लब्धवानमितद्युतिः । वन पर्व १२६।३७।

⸸ देवेन वृष्टेपि हिरण्यवर्षे द्वीपान् समग्रांश्चतुरोपिजित्वा ।
शक्रस्य चार्धासन मप्यवाप्य मान्धातु रासीद्विषयेष्वतृप्तिः ।
बुद्धचरित ११।१३।

※ यस्मात् त्रसन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः । भागवत९।६।३०

मतिनार की पुत्री गौरी युवनाश्व की स्त्री और मांधाता की माता थी ॐ। अतः यहां वंशावली में पाठ भ्रष्ट हुआ है। भागवत ने एक कल्पना और की है यह कि मांधाता के पिता युवनाश्व ने पुत्रेष्टि यज्ञ का जल पीलिया था जो कि युवनाश्व की स्त्री को पीना चाहिये था। अतः युवनाश्व के गर्भ रहा और मांधाता उत्पन्न हुआ था। जब कि पुराणों ने स्पष्ट कहा है कि मांधाता अन्तिनार की पुत्री गौरी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

रावण का बाल्य-काल——रावण कुंभकरण विभीषण आदि सभी का जन्म गन्धमादन पर्वत पर हुआ था। यहीं पर इन्हों ने वेद वेदाङ्ग तथा धनुर्वेद की शिक्षा पाई थी। और जबतक अपने पिता के पास गन्धमादन पर्वत पर रहे तबतक वे सभी सच्चरित्र रहे थे।

सर्वे वेद विदः शूराः सर्वे सुचरित व्रताः।
ऊषुः पित्रा सहरता गन्धमादन पर्वते। वन पर्व २ ४।१३।

उपरोक्त वर्णन मेरे विचार से सब से पहिले रावण का है।

विश्वामित्र—— विश्वामित्र भी अनेक हुए हैं। एक तो दाशरथी राम के समकालीन थे उनका उल्लेख होचुका। एक विश्वामित्र

ॐ गौरी कन्या तृतीया च मांधातुर्जननी शुभा। मत्स्य ४६।८।
गौरी कन्या च विख्याता मांधातुर्जननी शुभा।
अन्तिनारात्मजा गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता॥ वायु पुराण।

दुष्यन्त के समकालीन थे विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला ‡ जो कि अप्सरा मैनका के गर्भ से उत्पन्न हुई थी दुष्यन्त की स्त्री थी। एक विश्वामित्र त्रिशंकु तथा त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र के यज्ञ कराने वाले थे। त्रिशंकु का दूसरा नाम सत्यव्रत था इस की सत्यरता नाम की स्त्री केकय देश की थी। "तस्य सत्यरता नाम भार्या कैकय वंशजा।" (ब्रह्माण्ड पुराण ३।६३।११५।) इस के संवन्ध में प्रसिद्ध है कि सत्यव्रत ने देवों को मारकर विदर्भ की स्त्री का हरण किया था। "तेन भार्या विदर्भस्य हृत्वा हृत्वा

---

‡ शकुन्तला को ऋषि कण्व ने पाला था। कण्व का आश्रम मालिनी नदी के तट पर था। इसका वर्णन महाभारत आदि पर्व अ० ७० में है। इस के संवन्ध में जयचन्द विद्यालंकार ने इस प्रकार लिखा है। "मालिनी नदी को आज-कल मालिन कहते हैं। यह गढ़वाल की तराई के पहाड़ों से निकल कर नजीबाबाद के पच्छिम बहती हुई बिजनौर जिले के पच्छिम तट के मध्यभाग में गंगा में जा मिलती है नजीबाबाद और मुअज्जमपुर नारायण स्टेशन के बीच इस्ट इंडियन रेल्वे का जो पुल है वह उसी पर है गढ़वाल जिले में हिमालय की तराई में चौकी घाटा के उत्तर आज भी लोग इस के तट पर किनक सोत नाम का एक कुंज दिखाते हैं उसे कण्व के आश्रम का स्थान बताते हैं।"

(भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० १८८)

दिवोकसान् ।" ब्रह्माण्ड ३।६३। सत्यव्रत के पुत्र हरिश्चन्द्र की सौ स्त्रियां थीं । "तस्य ह शतं जाया वभूवुः ।" (शतपथ) इन में एक सत्यवति शिवि देश की होने के कारण शैव्या भी कहाती थीं। यह १६ वां त्रेता युग था।

एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्व क्षत्रान्त कृद्विभुः ।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्र पुरःसरः ॥

मत्स्य पुराण ४७।२४४ ।

अर्थात् १६ वें त्रेता युग में जमदग्नि के पुत्र परशुराम तथा विश्वामित्र उत्पन्न हुए थे ।

हिमालय पर्वत पर एकत्रित होने वाले वैद्यों के समुदाय में भी आयुर्वेदीय चरक संहिता ने भी बिश्वामित्र का उल्लेख किया है। एक विश्वामित्र का वैद्याचार्य के रूप में सुश्रुत टीकाकार आचार्य डल्हण ने भी उल्लेख किया है।

तथाचोक्त'विश्वामित्रेण यावशूकस्यपानं कुलत्थक्षार वारिभिः।

(सुश्रुत टीका)

परशुराम ---परशुराम अनेक हुये हैं यह लिखने के पूर्व हम इनका संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक समझते हैं। वहुत प्राचीन काल में भृगु नाम के ऋषि थे। उनकी दिव्या और पौलौमी नाम की दो स्त्रियां थीं। दिव्या दैत्य हिरण्यकशिपु की पुत्री और पौलोमी

पुलोम दानव की पुत्री थी & । दिव्या से दैत्याचार्य शुक्र या उशना थे। और पौलोमा से प्रसिद्ध ऋषि च्यवन हुए। च्यवन की स्त्री मनुपुत्र राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या थी। इन से आप्नवान और दधीच नाम के दो पुत्र हुये। आप्नवान की स्त्री राजा नहुष की पुत्री (ययाति की वहिन) थी। इन से ऊर्व हुए ऊर्व के ऋचीक ऋचीक की स्त्री सत्यवती राजा गाधि की पुत्री थी और यही विश्वामित्र की वहिन थी। सत्यवति और ऋचीक से जमदग्नि पुत्र हुए जमदग्नि की स्त्री का नाम कमली या रेणुका था। यह इक्ष्वाकु वंशी प्रसेनजित की पुत्री थी इस से रुक्मबान, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम उत्पन्न हुए थे। अतः परशुराम विश्वामित्र की वहिन के पौत्र हुए। इन परशुराम ने माहिष्मति के राजा सहस्रबाहु को मारा था। उन्नीसवें त्रेता--युगीन परशुराम का विश्वामित्र के साथ उल्लेख हो ही चुका है। एक जामदग्न्य परशुराम ने धृतराष्ट्र की सभा में उपस्थित होकर दुर्योधन को पाण्डवों से सन्धि करने के लिये समझाया था ※। कुन्ती पुत्र कर्ण शान्तनु पुत्र भीष्म के शस्त्र विद्या के गुरू परशुराम थे यह प्रसिद्ध ही है। इन के

& दानव पुलोम की ही पुत्री शची थी जो देवराज इन्द्र की स्त्री थी।

※ जामदग्न्य वचः श्रुत्वा कण्वोपि भगवानृषिः। उद्योग प० ९६।१

अतिरिक्त रुक्मिणी का भाई रुक्मी † तथा मद्र देश के राजा शल्य ‡ के गुरू तथा द्रोणाचार्य के भी परशुराम गुरू थे ॥ । अब यह कहना भी कठिन है कि ये परशुराम एक ही थे या भिन्न भिन्न थे।

परशुराम का आश्रम—— मूल परशुराम का आश्रम समुद्र तट पर सूर्पारक क्षेत्र (सुपारा) में था ।

अस्ति सूर्पारकं नाम गुह्यं क्षेत्रं परंमम ।
जामदग्न्यस्य रामस्य स्वाश्रमोथ भविष्यति ।
तत्र तिष्ठाम्यहंदेविसमुद्रतटमाश्रितः ।

वाराह पुराण १५०।४२

चतुर्थ अध्याय समाप्त

---

† रुक्मी चास्त्राणि दिव्यानि द्रुमात प्राप महाबलः ।
जामदग्न्यस्तथा रामात् ब्राह्ममस्त्रमवाप्तवान् । हरिवंश २।५८।१४

‡ शल्ये मद्राधिपे चैव कथ कृष्ण स्त्वयार्चितः ।
जामदग्न्यस्य दयितः शिष्यो विप्रस्य भारत । म-भा-सभा-प-३७।१५

॥ अस्त्राणि समग्राणि स संहाराणि भार्गव । ४०
स प्रयोग रहस्यानि दातुमर्हस्यशेषतः ।
तथे त्युकत्वा ततस्तस्मै प्रादादस्त्राणि भार्गवः ।
स रहस्यव्रतं चैव धनुर्वेदमशेषतः । म-भा-आ-प- १३१

अथ पञ्चम अध्याय प्रारंभ

यद्यपि धन्वन्तरि परिचय एक प्रकार से पूरा होगया है किन्तु फिर भी धन्वन्तरि के उपदेश जो कि सुश्रुत संहिता नाम से प्रसिद्ध है उस के उद्धरण वाग्भट, चरक और काश्यप संहिता आदि ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, उन पर अभी कुछ प्रकाश डालना बाकी है। ताकि धन्वन्तरि परिचय सर्वांग पूर्ण होजाय। इस से न केवल धन्वन्तरि परिचय पूर्ण होगा अपितु वाग्भट, चरक तथा काश्यप संहिता आदि ग्रन्थों के निर्माण काल का भी ज्ञान होजायगा।

आयुर्वेद में उपलब्ध होने वाले ग्रन्थों में वाग्भट, चरक संहिता, और काश्यप संहिता ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका वैद्य समाज में समुचित आदर है। उक्त ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर धन्वन्तरि का उल्लेख है। और वाग्भट में उपरोक्त सभी ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है, अतः सर्व प्रथम हम वाग्भट पर ही विचार करेंगे।

वाग्भट ने अस्थियों की गणना लिखते समय धन्वन्तरि के मत को भी बताया है। "धन्वन्तरिस्तु त्रीण्याह"। वा० भ० शा० स्था० ३।१६। ग्रहणी कला के वर्णन में धन्वन्तरि मत को भी बताया है। "सैव धन्वन्तरि मते कलापित्त धराह्वया"। (वा० भ० शा० स्था० ३।५०) संधियों की गणना में आत्रेय मत को प्रदर्शित किया है। "सहस्रेद्वे निजगादात्रि नन्दनः"। (वा० भ० शा० स्था० ३।१७)

पाचक पित्त के संबन्ध में आत्रेय मत को उद्धृत किया है।
"दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेय शासनम्।" (वा० भ० शा० ३।४६)
अपने ग्रंथ की अष्टांग हृदय की उत्तमता को प्रदर्शित करते समय या यों कहिये इसकी वकालत में चरक सुश्रुत और भेड जतुकर्ण क्षारपाणि तथा हारीत आदि सभी का स्मरण किया है-

ऋषि प्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरक सुश्रुतौ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम्॥

(वा० भ० उत्तर स्था० ४।८८) बाल चिकित्साधिकार में ऋषि कश्यप के मत को उद्धृत किया है "विविधानाभयानेतद् वृद्ध कश्यप निर्मितम्।" (वा-भ-उत्तर-२।४२) बाल चिकित्सा में में ऋषि कश्यप निर्मित बाल ग्रह-नाशक धूप को भी लिखा है।

वचा हिंगु विडंगानि सैंधवं गजपिप्पली।
पाठा प्रतिविषा व्योषं दशांगः कश्यपोदितः॥

(वा-भ० उत्तर ३।४६)

घुडवच हींग वायविडंग सैंधानमक गजपीपल पाठा अतीस (मीठी अतीस) सौंठ मिरच और पीपल इनकी धूनी देने से बालग्रह-जन्य [जीवाणुजन्य] बालकों के रोग दूर होते हैं।

विष नाशक धूप--

नृकेशाः सर्षपः पीता गुडोजीर्णश्च धूपनम्।
विष दंशस्य सर्वस्य कश्यपः परमब्रवीत्॥

वा भ० उत्तर स्था० ३७।३२

अर्थात् मनुष्य के शिर के बाल पीली सरसों और पुराना गुड़ इसकी धूनी देने से बिच्छू ततैया आदि का दंशन (काठे) का विष दूर होता है।

वाग्भट ने विष वेग वर्णन के प्रसंग में राजर्षि नग्नजित के मत को भी उद्धृत किया है।

दूष्यति प्रथमे रक्तं द्वितीयेश्वयथूद्भवः।

सप्तमे मरणं वेग इति नग्नजितो मतम्।

(अष्टांग सग्रह उत्तर स्था०)

वाग्भट के टीकाकार अरुणदत्त ने अपनी सर्वांग सुन्दरि टीका में नग्नजित के मत का उल्लेख किया है। "तत्राहार रसात्पूर्वं रस धातु विवर्धते।" (शा-स्था० ३।६९) नग्नजित का विस्तृत वर्णन परिशिष्ट में किया जायगा। उक्त प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध है कि वाग्भट चरक सुश्रुत भेड़ तथा कश्यप संहिता के बाद का ग्रंथ है।

मिलिन्द पन्हो (मिलिन्द प्रश्न) नामक एक पुस्तक है पाली भाषा से अब हिन्दी अनुवाद भी जगदीश काश्यप ने कर दिया है। मिलिन्द ईसा की दूसरी शताब्दी में हुआ है यह यूनानी राजा था। इस ने स्यालकोट में भी राज किया है किन्तु बाद में वाल्हीक बलख (अफ़गानिस्तान से उत्तर) में जाकर बस गया था बलख का नाम अंग्रेजी में बेक्टेरिया है। अतः यह Manander king of Bactria नाम से प्रसिद्ध हुआ था। इसके पुस्तक का

उद्धरण विद्वद्वर पं० हेमराज शर्मा राज गुरू नैपाल ने काश्यप संहिता के उपोद्‌घात में दिया है। उस में प्राचीन वैद्याचार्यों के नाम हैं जिस में धन्वन्तरि का भी नाम है।

"भन्ते नागसेन ये ते अहेसुं टिकिच्छकानां पुब्बका आचारिया, नारदो, धम्मन्तरि, अंगिरसो, कपिलो, कण्डरग्गिसामो, अतुलो, पुब्बकच्चायनो सब्बेते ये आचारिया स किं येव रोगुप्पतिं च निदानं च सभावंच समुत्थानं च टिकिच्छां च किरियां च सिद्धासिद्धांच सब्बान् तं निरवसेसं जानित्वा इमस्मिन काये एतका रोगा उपज्जि सन्तीति एकाप हारेन कलापग्गाहं कारित्वा सुत्तं बन्धिसुअवसब्बन्नुनो एते सब्बे। (उपोद्‌घात काश्यप संहिता पृ० ६०)

उपरोक्त पाठ में पूर्वाचार्य नारद कपिल अंगिरा और धन्वन्तरि के सबन्ध में कहा है कि ये सब निदान रोग की उत्पत्ति तथा चिकित्सा में निपुण थे। इसी प्रकार अयोधर जातक में भी धन्वन्तरि तथा धन्वन्तरि के शिष्य वैतरण और भोज की चर्चा की है।

धम्मन्तरि वैतरणि च भोजो विसानि हत्वा च भुजंगमानम्।
सूयन्ति ये कालकता तयेव। (वही पृ० ६१)

उक्त पाठ में धन्वन्तरि वैतरण और भोज को सर्प-चिकित्सक

प्रदर्शित किया है । इसी प्रकार आर्यसूरीय जा क में कहा है कि रोगों को नाश करने वाले धन्वन्तरि जैसे वैद्य भी विनाश को प्राप्त होगये औरों की तो बात ही क्या ?

हत्वा विषाणि च तपोबल सिद्ध मंत्रा व्याधीन् नृणामुप शमय्यच वैद्य वर्याः । (उपोद्घात काश्यप संहिता पृ० ६१।

चरक संहिता ——चरक संहिता में भी यत्र तत्र धन्वन्तरि के मत को उद्धृत किया है । "सर्वांग निर्वृत्तियुगपदिति धन्वन्तरिः ।" (च-शा० ६।२४) "दाहे धान्वन्तरीयाणाम त्रामि भिषजां बलम् ।" (च-चि० ५।४१) " तां शल्यविद्भिः कुशलैश्चिकित्स्याः शस्त्रेण संशोधनरोपणैश्च ।" (च-चि: ६) " इदंतु शल्य हर्तृणां कर्मस्या दृष्ट कर्मणाम् ।" [च-चि० १२।१७६]

काश्यप संहिता ——काश्यप संहिता में शिष्योपक्रमणी अध्याय में धन्वन्तरि को आहुती देने का विधान है । "धन्वन्तरये स्वाहा" [पृ० ३६] उक्त प्रमाणों से सुनिश्चित है कि धन्वन्तरि वाग्भट पुनर्वसु और ऋषि कश्यप से पूर्व के थे ।

चरक सहिता तथा काश्यप संहिता के देखने से ज्ञात होता है कि उस युग में आयुर्वेद वैज्ञानिकों के सम्मेलन (कान्फ्रेंस) हुआ करते थे । वे प्रदर्शन मात्र न होकर बड़े उपयोगी होते थे। उन में प्रस्ताव पास नहीं होते थे। बल्कि आयुर्वेद विज्ञान के गंभीरतर विषयों पर वाद-विवाद होते थे । इन वाद-विवादों

में भाग लेने वाले बड़े बड़े तपस्वी धर्मात्मा वेदों के ज्ञाता तथा आयुर्वेद वैज्ञानिक ऋषि महर्षि और अनेक देशों के राजा भी हुआ करते थे ।

चैत्ररथ वन में—इसी प्रकार का एक सम्मेलन रस और आहार विनिश्चयार्थ कैलाश मानसरोवर के पास कुबेर के उद्यान (बाग) चैत्ररथ वन में भी हुआ था । इस में भाग लेने वाले सभी धर्मात्मा जितात्मा बहुश्रुत वृद्ध एवं सभी महर्षि थे । जिन के नाम ये हैं ।

आत्रेयो भद्रकाप्यश्च शाकुन्तेयस्तथैव च ।
पूर्णाक्षश्चैव मौद्गल्यो हिरण्याक्षश्च कौशिकः ।
यः कुमार शिरानाम भरद्वाजः सचानघः ।
श्रीमान्वार्यो विदश्चैव राजा मतिमतांवरः ।
निमिश्च राजा वैदेहा बडिशश्च महामतिः ।
कांकायनश्च बाल्हीको बाल्हीक भिषजांवरः ।
एते श्रुत वयोवृद्धा जितात्मानो महर्षयः ।
वने चैत्ररथे रम्ये समीयुर्विजि हीर्षवः । च० सू० २६ ।

आत्रेय, भद्रकाप्य, शाकुन्तये, पूर्णाक्ष, मौदगल्य, हिरण्याक्ष, कौशिक, कुमार शिरा भरद्वाज, राजर्षि वार्योविद, वैदेह निमि, बडिश और बाल्हीक वैद्यों में श्रेष्ठ कांकायन ।

वक्तव्य—संभवतः चैत्ररथ वन बाल्हीक देश के समीप ही होगा । इसी लिये पाणिनीय ने गणपाठ में "चित्ररथ वाल्हीकम्" सूत्र की

रचना की है।

इसी प्रकार का एक सम्मेलन या परिषद् रोगों की उत्पत्ति के संबन्ध में हुआ था † उस में सम्मिलित होने होने वालों के नाम ये हैं काशि का राजा वामक, मौद्गल्य, शरलोमा, राजर्षि वार्योविद, शौनक, हिरण्याक्ष, भद्रकाप्य, कांकायन, भरद्वाज, भिक्षु आत्रेय। (च सू० २५) इसी प्रकार की एक परिषद् का वर्णन (च-सू-अ-१२) में भी है इस में वायु के संबन्ध में विचार किया गया है। इसमें मारीचि(कश्यप) और काश्यप के अतिरिक्त और सब पूर्वोक्त नाम ही हैं।

काश्यप संहिता या वृद्धजीवक तंत्र— काश्यप संहिता में ऋषि कश्यप की परिषद् में भाग लेने वालों के नाम ये हैं—दारुवाह, भार्गव प्रमित, राजर्षि वार्योविद, कांकायन, कृष्ण भरद्वाज, हिरण्याक्ष, वैदेह निमि, गार्ग्य, माठर, वृद्धजीवक, आत्रेय पुनर्वसु पाराशर्य, भेल, (पुनर्वसु शिष्य) वृद्ध काश्यप, वात्स्य और कौत्स इसका कुछ दिग्दर्शन इस प्रकार है।

एको रोगो रुजाकरण सामान्यादिति भार्गव प्रमितिः।
द्वौरोगौ निजश्चागन्तुश्चेति इति वार्योविदः। त्रयो रोगाः साध्य-याप्या साध्या इति कांकायनः। चत्वारो रोगा आगन्तु वात-

---

† पुरा प्रत्यक्ष धर्माणं भगवन्तं पुनर्वसुम्।
समेतानां महर्षीणां प्रादुरासीदियंकथा ॥ च०सू० २५ ॥

पित्त कफजा इति कृष्णो भारद्वाजः ।" "पंचरोगा आगन्तु वात पित्त कफ त्रिदोषजा इति दारुवाहो राजर्षिः ।" सप्तरोगा वातायेकैक द्वित्रिदोषजा इति हिरण्याक्षः । अष्टौ रोगाः वातायेकैक द्वित्रिदोषागन्तु निमित्ता इति वैदेहो निमिः । अपरि संख्येयाः सम हीनाधिक दोषभेदात् इति वृद्ध जीवकः । द्वावेव खलु रोगौ निजागन्तुश्च इति भगवान् कश्यपः । (काश्यप संहिता सू०२७पृ०२६) जन्म प्रभृति बालानां वस्तिकर्मोपकल्पयेत् । इत्याह गार्ग्यो । नेत्याह बालत्वादिति माठरः । अल्पान्तरत्वान्नेत्याह इति आत्रेयः पुनर्वसुः । पाराशर्यस्तु नेत्याह तदादुर्ललितो हि-सः । त्रिवर्षस्यैव तु हितंनेति भेलस्तमब्रवीत् । (काश्यप संहिता पृ १०९-१०) इस प्रकार राजर्षिवार्योविद,निमिवैदेह,हिरण्याक्ष,कांकायन,भेल, ये पांच ऐसे व्यक्ति हैं जो कश्यप तथा पुनर्वसु आत्रेय दोनों की परिषदों में भाग लेते थे । और पुनर्वसु आत्रेय कश्यप के तथा कश्यप पुनर्वसु के यहां उपस्थित रहते थे अतः यह सभी समकालीन थे ।

काशिराज, वार्योविद, और वामक——

यह लिखने में भी हमें प्रसन्नता होती है कि उपरोक्त नामों में वार्योविद तथा वामक दोनों काशि के राजा थे । "इत्येवमुक्तो भगवान काशिराजो महामुनिः" (काश्यप संहिता पृ० ३३७)

इतिवार्योविदायेदं महीपाय महानृषिः ।
शशास सर्वमखिलं बालानामथ भेषजम् । (का-सं-पृ-२६३)

इसी प्रकार वामक के लिये भी अनेक स्थान पर काशिराज शब्द

का प्रयोग हुआ है ।

तदनन्तरं काशिपतिर्वामको वाक्य मर्थवित् ।
व्याजहारर्षि समिति मभिसृत्याभिवाद्यच। (च० सू० २५।३)

अथ आत्रेयस्य भगवतो वचन मनुनिशम्य पुनरेव वामकः काशिपतिरुवाच । (च० सू० २५।३०)

नवेत्युक्तं नरेन्द्रेण प्रोवाचर्षीन् पुनर्वसुः । च० सू० २५।५।

नरेन्द्रेण इति काशिपति नाम्ना राजर्षिणा (टीकाकार चक्रपाणि

दारुवाह —— दारुवाह के मत का उल्लेख चरक संहिता के टीका कार चक्रपाणि ने भी किया है ।

यदाह दारुवाहः-सूक्ष्म सूक्ष्म तरास्येषु दूर दूर तरेषुच ।
दोषो रक्तादि मार्गेषु शनैरल्पं चिरेणयत् । (च० चि० ३)

दारुवाह राजर्षि था कुछेक विद्वानों का मत है कि दारुवाह ही नग्नजित था । अस्तु कुछ हो इन परिषदों में भाग लेनेवाले ऋषियों के अतिरिक्त राजर्षि काशिपति वामक राजर्षि काशिपति वार्योविद और राजर्षि दारुवाह तथा विदेह राज निमि अथवा विदेह जनक भी थे । इस प्रकार चार राजा थे। और एक वाल्हीक (बलख) निवासी कांकायन थे। किन्तु काश्यप संहिता के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऋषियों के पास ईराक ईरान आदि अन्य देशों के छात्र भी अध्ययन के लिये आया करते थे । अथवा भारत के वाहर के वैद्यों से उनका संवन्ध रहा करता होगा।

इसी आधार पर कश्यप ने देश सात्म्याध्याय में कर्वट ताम्रलिप्त ऋषभ द्वीप तथा चीन तक का उल्लेख किया है। और प्रसूतावस्था में उपचार के साधारण नियमों का दिग्दर्शन करते हुये विदेशी म्लेच्छों की प्रथा का भी उल्लेख किया है।

कुमार प्रसवे तैलं कुमारी प्रसवे घृतम् ।
पिवेज्जीर्णं यवागूं च दीपनीयोप संस्कृताम् ।। ३२ ।।
पंचाहं सप्तरात्रं वा ततो मण्डाद्युपक्रमः ।
देशे साधारणे चास्याः हितः साधारणो विधिः ।। ३३ ।।
वैदेश्याश्च प्रयच्छन्ति विविधा म्लेच्छ जातयः ।
रक्तं मांसस्य निर्यूहं कन्द मूल फलानि च ।।

काश्यप संहिता पृ० २७३।

अर्थात् प्रसूतावस्था में लड़का होने पर तैल और लड़की होने पर घृत पान करना चाहिए। इस के बाद ५--७ दिन तक दीपनीय औषधियों से युक्त यवागू सेवन करना चाहिये यह साधारण नियम है। किन्तु विदेशी अनेक जाति के म्लेच्छ रक्त तथा मांस का रस (शोरबा) और कन्द-मूल-फल का सेवन कराते हैं। अस्तु ऋषि कश्यप वेद तथा वेदाङ्ग के पारंगत तथा वृद्ध थे। और उन का आश्रम गंगा द्वार हरद्वार था और यहीं पर शिष्यों को पढ़ाया करते थे। "**महर्षिं कश्यपं वृद्धं वेद वेदांग पारगम् ।**"

(वृद्धजीवक तंत्र पृ० १६६)

हुतग्निहोत्र मासीनं गंगा द्वारे प्रजापतिम् ।
प प्रच्छ स्थविरः काले प्रजानां हित काम्यया ॥

(काश्यप संहिता पृ० १३७)

किन्तु जिस प्रकार धन्वन्तरि तथा ऋषि कश्यप का आश्रम था उस प्रकार पुनर्वसु आत्रेय का कोई एक आश्रम निश्चित नहीं था । पुनर्वसु का अध्यापन कार्य अनेक स्थानों में रहा है। जिन के नाम ये हैं । एक स्थान पुनर्वसु का शिष्यों के पढ़ाने का चैत्ररथ वन में था † यह चैत्ररथ वन कैलाश पर्वत के समीप था। इसी वन में चैत्ररथ नामक कुबेर का उद्यान था । 'अस्योद्यानं चैत्ररथम्' [अमरकोश] यहीं पर चित्ररथ नाम की नदी बहती थी। दूसरा सिद्ध विद्याधर तथा किन्नरों का निवास स्थान कैलाश पर्वत था § । तीसरा हिमालय पर्वत से उत्तर अर्थात् तिब्बत था जो कि देवता तथा सिद्धों का स्थान था ‡ । चतुर्थ पंचनद देश जो कि आज पंजाब नाम से प्रसिद्ध है ❀ । पांचवां पांचाल

† वने चैत्ररथे रम्ये समीयुर्विजिहीर्षवः । च-सू- २६ ।

§ सिद्ध विद्याधराकीर्णे कैलासे नन्दनोपमे । च-चि- १३ ।
कैलासे किन्नरा कीर्णे वहु प्रस्रवणौषधे । च-चि- २१ ।

‡ पुण्ये हिमवतः पार्श्वे सुर सिद्धर्षि सेविते । च-चि- १२ ।
उत्तरे हिमवतः पार्श्वे विनयादुपेत्याभिवाद्य च अग्निवेश उवाच ।
च-चि- ६ ।

❀ विरहन्तं जितात्मानं पंच गंगे पुनर्वसुम् । च-चि- ४ ।

देश की राजधानी कांपिल्य नगर में ※ (कंपिलाग्राम कायमगंज तहसील जिला फरुक्खाबाद) और छटा भेल संहिता के अनुसार गान्धार देश ✠। जिन में पंजाब, गान्धार, तथा कांपिल्य, भ्रमण मात्र है, वास्तविक निवास स्थान कैलाश मानसरोवर और देव लोक ही था। प्रसंगवश यह कहना भी उचित ही है कि उस युग में न केवल तिब्बत पर अधिकार था अपितु हिमालय का कुछ भाग भी ‖ देवों के ही अधिकार में था और हिमालय पर भी सिद्ध गन्धर्व, किन्नर तथा देवता रहा करते थे ‡। आत्रेय पुनर्वसु न केवल आयुर्वेद के पूर्ण ज्ञाता तथा प्रवतक थे अपितु वेद, वेदांग, सांख्य, योग, आदि सभी शास्त्रों के अद्वितीय पडित

※ जनपद मंडले पांचाल क्षेत्रे द्विजाति वराध्युषिते कांपिल्यराजधान्याम्। च० चि० ३।

✠ गान्धार भूमौ राजर्षिर्नग्नजित् स्वर्णमार्गदः। भेलसंहिता।

‖ हिमालय पवत १५०० मील लंबा और २५० मील तक चौड़ा है। काश्मीर, शिमला लद्दाख अल्मोड़ा नैनीताल भूटान नेपाल शिकम आदि राज्य इसी पर हैं।

‡ गंगा प्रभवनं अमर गन्धर्व किन्नरानु चरित अनेक रत्न निचयं अचिन्तयाद्भुतप्रभावं महर्षि सिद्धचारणानु चरितं दिव्यतीर्थौषधि प्रभावं अतिशरण्यं हिमवन्तं अमराधिपतिगुप्तं जग्मुः। (च० चि० अ० १। पा० ४)

थे। और अग्निहोत्री त्यागी तपस्वी भी थे। इसके अतिरिक्त धृति स्मृति ज्ञान विज्ञान तथा क्षमा के समुद्र थे। और अपने विचारों में मेरु पर्वत के समान दृढ़ एवं अचल थे। पुनर्वसु ही नहीं आयुर्वेद प्रवर्तक सभी ऋषि ब्रह्म ज्ञान के निधि दम और नियम के पालनकर्ता तथा तपस्वी थे जो कि तेज से अग्नि के समान चमकते थे।

ब्रह्म ज्ञानस्य निधयो दमस्य नियमस्य च।

तपसा तेजसादीप्ता हूयमाना इवाग्नयः॥ (च० सू० १)

विदेह निमि ———विदेह निमि या विदेह जनक दोनों ही शब्द इन के लिये प्रयुक्त हुये हैं। ये विदेह देश के राजा तथा मिथिला पुरी अथवा जनक पुरी इनकी राजधानी थी।

आज कल जनकपुर नेपाल राज्य में है। ये भी पुनर्वसु आत्रेय के समकालीन थे। निमि शालाक्य तंत्रकार था। आयुर्वेदाचार्य था। आयुर्वेद ग्रन्थों के टीका कारों ने इन के मत को अनेक स्थानों पर उद्धृत किया है। विदेह निमि आयुर्वेद के अतिरिक्त वेदान्त शास्त्र का पूर्ण ज्ञाता था। ऋषि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव से कहा है कि ———

स धर्म कुशलो राजा मोक्षशास्त्र विशारदः।

म० भा० शा० प० ३२५।११।

अर्थात् राजा निमि जनक धर्मशास्त्र और वेदान्त शास्त्र का पंडित है। इसी लिये व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव जी को इन के

पास मिथिला में वेदान्त सीखने के लिए भेजा था १। निमिविदेह ऋषि याज्ञवल्क्य का मित्र तथा शिष्य था। जनक और याज्ञवल्क्य संवाद शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्यक उपनिषद्, ब्रह्मांड, पुराण तथा महाभारत आदि ग्रन्थों में मिलता है।। भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से इस संवाद की चर्चा की है ❀। याज्ञवल्क्य ऋषि वैशंपायन के शिष्य तथा भागनेय (भांजे) थे। किन्तु याज्ञवल्क्य का वैशंपायन से किसी कारण वश वैमनस्य होगया था। अतः याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद की माध्यन्दिनी आदि १५ शाखाओं का पृथक प्रचार किया था। याज्ञवल्क्य कौशिक गोत्री बड़ा तेजस्वो तथा दीर्घायु का ब्राह्मण था। दीर्घायु होने का बहुत बड़ा प्रमाण यह है कि याज्ञवल्क्य ने जो कि भीष्म पितामह का साथी था इस ने अर्जुन का पौत्र परिक्षित और परीक्षित का पौत्र शतानीक को वेद पढ़ाया था ✠। किन्तु वह अपने विचारों की प्रतिकूलता को सहन नहीं कर सकता था। यही कारण है कि अपने मामा तथा गुरू वैशंपायन से विवाद कर लिया था और यह विवाद बहुत लंबा और जीवन पर्यन्त

---

१ उवाच गच्छेति तदा जनकं मिथिलेश्वरम्।

❀ अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्।
याज्ञवल्क्यस्य संवादं जनकस्य च भारत॥ शान्ति प० ३०६।३।

✠ जनमेजय स्यापि शतानीको योसो याज्ञवल्क्याद्वेदमधीत्य। वि० पु० ४।३८।

चला था। याज्ञवल्क्य की मैत्रेयी और कात्यायनी दो स्त्रियां थीं। मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी। कात्यायनी का पुत्र कात्यायन और कात्यायन का पुत्र वररुचि था।

कात्यायनं सुतं प्राप्य वेदसूत्रस्य कारकम्।

स्कन्ध पु० ना० ख० १३०।१।

कात्यायनाभिधंचैव यज्ञ विद्या विचक्षणम्।

पुत्रो वररुचिर्यस्य बभूव गुणसागरः॥

स्कन्ध पु० ना० ख० १३१।४८।

याज्ञवल्क्य के मामा वैशंपायन कृष्ण यजुर्वेद के ज्ञाता थे। वैशंपायन के गुरु कृष्ण द्वैपायन व्यास थे। याज्ञवल्क्य का विवाद होने पर इन्हों ने यजुर्वेद सूर्य से पढ़ा था। राजा जनक से याज्ञवल्क्य ने कहा था कि समस्त शतपथ ब्राह्मण मैंने बनाया है॥ यजुर्वेद की १५ शाखाएं सूर्य से पढ़ी हैं। पढ़ने के बाद सौ शिष्यों को मैंने पढ़ाया है। यह बात मेरे मामा तथा उन के शिष्यों को बुरी लगी है †। आगे कहा है कि आप के पिता का यज्ञ मैं ने कराया था। तब मेरे गुरुभाई—सुमन्तु, पैल, और

॥ ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं स सग्रहम्।

चक्रे सपरिशेषं च हर्षण परमेण ह।

† कृत्वा अध्ययनं तेषां शिष्याणां शतमुत्तमम्।

विप्रियार्थं स शिष्यस्य मातुलस्य महात्मनः। म-भा-शां-प- ३१८।

जैमिनीय ने मेरा सम्मान किया था ; याज्ञवल्क्य का समस्त उपदेश सुनने के बाद राजा जनक ने अनेक गौ धन रत्न सुवर्ण आदि ब्राह्मणों को दान देकर और अपने पुत्र को राज्य भार सौंप कर सन्यासी होगया था ⁑ ।

जनक कराल ———निमि का पुत्र कराल था । भीष्म ने युधिष्ठिर से कराल जनक और मैत्रावरुणि वशिष्ठ के संवाद को वताया है † । कराल ने वशिष्ठ से अध्यात्म विषय को समझा है ❀ । कराल जनक भी अनेक शास्त्र तथा वेदों का ज्ञात था । वेदान्त और आयुर्वेद का पूर्ण पंडित था । और आयुर्वेद में शालाक्य तंत्रकार भी था । आयुर्वेद की टीकाओं में यत्र तत्र आज भी इस की संहिता के श्लोक उपलब्ध होते हैं । आयुर्वेद ज्ञान का परिचय कराल ने वशिष्ठ के सामने भी उपस्थित किया है और साथ ही यह भी कहा है कि यह आयुर्वेद मैं ने अपने पिता से पढ़ा है । कराल कहता है कि मेरे पिता ने मुझे वताया है कि शरीर की रचना में अस्थि (हड्डी) स्नायु और मज्जा (चर्वी) ये

⁑ विदेह राज्यं च तदा प्रतिष्ठाप्य सुतस्य वै ।
यति धर्म मुपासंश्चाप्यवसन् मिथिलाधिपः। म-भ-शां-प- ३१८।

† अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
वशिष्ठस्य च संवादं कराल जनकस्य च ।

❀ पप्रच्छर्षिवरं राजा कराल जनकःपुरा । म-भा-शां-प- ३०२।७।

पिता से उत्पन्न होते हैं। और त्वक् (चमड़ा) मांस और रक्त ये माता से होते हैं *। प्रकृति पुरुष के संवन्ध में कराल ने कहा है कि——-

अक्षरक्षरयोरेष द्वयोः संवन्ध इष्यते।
स्त्रीपुंसोर्वापि भगवन् संबन्धस्तद्वदुच्यते॥
ऋते तु पुरुषंनेह स्त्री गर्भं धारयत्युत।
ऋते स्त्रियं न पुरुषो रूपं निर्वर्तयेत्तथा॥

म० भा० शां० प० ३०४।१।

क्षर अक्षर या प्रकृति और पुरुष का संवन्ध भी स्त्री और पुरुष के समान है। जिस प्रकार पुरुष बिना स्त्री के और स्त्री बिना पुरुष के गर्भोत्पत्ति मे असमर्थ हैं। उसी प्रकार माया अथवा प्रकृति के विना ब्रह्म और ब्रह्म के विना माया भी सृष्टि की उत्पत्ति नहीं कर सकती है। अस्तु! कराल शास्त्रों का पूर्ण विद्वान था। कराल जनक की विद्वत्ता को ऋषि वशिष्ठ ने भी

* ये गुणाः पुरुषस्येह ये च मातृगुणास्तथा।
अस्थि स्नायुश्च मज्जा च जानीमः पितृतो द्विज।
त्वङ् मांस शोणित चेति मातृजान्यपि शुश्रुम॥

म० भा० शां० प० ३०४।६।

स्वीकार किया है ⚘। किन्तु यह सब कुछ होते हुये भी आपका विलासी जीवन था। इस विलासी जीवन ने ही आप को नष्ट कर दिया था। आचार्य कौटिल्य ने लिखा है कि किसी ब्राह्मण की कन्या पर आसक्त (आशिक) होने के कारण विदेह कराल नष्ट होगया था ❀। और इस का समर्थन भदन्त अश्वघोष ने भी अपने बुद्धचरित में किया है ÷।

कराल और वशिष्ठ संवाद का उदाहरण भीष्म ने युधिष्ठिर के सामने उपस्थित किया है। इसका इतना अभिप्राय स्पष्ट है कि कराल जनक महाभारत युद्ध से पूर्व का था।

निमि और कराल—

निमि और कराल क्रमशः पिता पुत्र थे। दोनों ही वेद आयुर्वेद तथा वेदान्त शास्त्र के ज्ञाता थे। साथ ही दोनों आयुर्वेद संहिता कार थे इन के मत के उद्धरण यत्र तत्र आज भी मिलते हैं विशेष कर शालाक्य—शिर नेत्र आदि रोगों के। नेत्र रोगों में दोनों ही के मतभेद का भी प्रदर्शन होता है। यह दोनों पिता पुत्र

⚘ धार्यते हित्व या ग्रंथ उभयोर्वेद शास्त्रयोः। म-भा-शां-प-३०४।१२

❀ कमाद् ब्राह्मण कन्यामभिमन्यमानः विननाश करालश्च वैदेहः। कौटिलीय अर्थशास्त्र प्रकरण ३

÷ करालजनकश्चैव हृत्वा ब्राह्मण कन्यकाम्।
अवाप भ्रंशमप्येवं न तु सेजे न मन्मथम् ॥ बुद्ध चरित ४।८०

थे इस का समर्थन निम्नलिखित प्रमाण से भी होता है। श्रीयुत भगवतदत्त B. A. ने भी लिखा है कि कराल के पिता निमि थे। और इस की पुष्टि में यह प्रमाण उपस्थित किया है। "एक समय मिथिला में मखादेव आम्र वन में विहार करते थे। बुद्ध बोले— आनन्द पूर्व काल में इसी मिथिला में मखादेव नामक धार्मिक राजा हुआ था। आनन्द–राजा मखादेव के पुत्र पौत्र आदि प्रव्रजित हुए। निमि उन राजाओं का अन्तिम धार्मिक महाराजा हुआ। निमि इसी वन में प्रव्रजित हुआ। आनन्द! निमि का कराल जनक नामक पुत्र हुआ। व ···· ·· प्रव्रजित नहीं हुआ। उस ने उस कल्याण कर्म को उच्छिन्न कर दिया। वह उन का अन्तिम पुरुष हुआ। (मज्झिम निकाय मखादेव, सुत्तन्त ८३, भारतवर्ष का इतिहास पृ० १९८)

इस के अतिरिक्त महाभारत सभा पर्व अ० ८ में दिवगत राजाओं के नाम गिनाये हैं उन में निमि का भी उल्लेख है ॐ। और युधिष्ठिर की सभा में उपस्थित होने वाले नामों में विदेह कृतक्षण का नाम है। "वैदेहोथं कृतक्षणः"। अतः यह सुनिश्चित है कि निमि और कराल जनक दोनों ही पिता पुत्र युधिष्ठिर की राजसूय यज्ञ से पूर्व ही दिवंगत हो चुके थे। और भीष्मपितामह ने शरशय्या पर युधिष्ठिर को कराल जनक और वशिष्ठ ऋषि

ॐ ययातिर्नहुषः पूरुर्मान्धाता सोमको नृगः।
अरिष्टनेमिः सिद्धश्च कृतवेगः कृतिर्निमिः॥ ८॥

का संवाद सुनाया है उसी प्रकार आयुर्वेद चिकित्सक ऋषि आत्रेय का नाम भी बताया है।

देवर्षि चरितं गार्ग्यं कृष्णात्रेय चिकित्सितम्।

शान्ति पर्व २१०।२१

कुछ लोग आत्रेय और कृष्णात्रेय को भिन्न मानते हैं यह उन की भूल है। चरक संहिता में भी आत्रेय पुनर्वसु और कृष्णात्रेय को एक ही व्यक्ति माना है।

पुण्ये हिमवतः पार्श्वे सुर सिद्धर्षि सेविते।
विहरन्तं तपो योगात्तत्वज्ञानार्थ दर्शिनम्।
कृष्णात्रेय जितात्मानं अग्निवेशोनुपृष्टवान्। च०चि० ३०।

इस से सिद्ध है कि भारत युद्ध से कृष्णात्रेय पूर्व के हैं।

संहिताओं का समय——निमि विदेह याज्ञवल्क्य का मित्र तथा शिष्य था। याज्ञवल्क्य वैशंपायन का शिष्य और वैशंपायन व्यास के शिष्य थे। ऋषि व्यास पराशर तथा दासराज की पुत्री सत्यवति से उत्पन्न हुये थे। और इन के गुरू जो कि रिश्ते में चाचा होते थे जातूकर्ण्य थे। और भीष्म के गुरू व्यास के प्रपितामह (परदादा) आपव वशिष्ठ थे। भारत युद्ध में भीष्म की आयु १६५—१७० वर्ष की होगी। भीष्म के चाचा वाल्हीक लगभग १८० वर्ष के और भीष्म के ताऊ देवापि जिन को आर्ष्टिषेण भी कहते हैं १९० वर्ष की आयु अवश्य होगी। ये बदरिकाश्रम

में रहते थे। वनवास काल में युधिष्ठिर आदि अर्जुन को छोड़कर चारों भाई और द्रौपदी आर्ष्टिषेण के पास रहे भी थे। व्यासजी भीष्म से १० वर्ष छोटे होंगे अतः व्यास जी की ९० वर्ष की आयु होगी। व्यास दीर्घ जीवी थे, परीक्षित पुत्र जनमेजय का यज्ञ भी व्यास जी के ही निरीक्षण में हुआ था। उस समय व्यास की आयु २५० वर्ष की होगी 🙏। भारत युद्ध में युधिष्ठिर की आयु लगभग ७० वर्ष और दुर्योधन की माता की कम से कम ९० वर्ष की अवश्य थी। गान्धारी के पिता सुबल और सुबल के पिता नग्नजित थे। यदि नग्नजित की ५० वर्ष की आयु में पौत्री गान्धारी का जन्म मान लेते हैं तो नग्नजित की भी अनुमानिक आयु १४५ वर्ष की ही होती है। और गान्धार देश में पुनर्वसु से जो नग्नजित ने विष विज्ञान संबन्धी प्रश्न पूछा है * उस समय नग्नजित को राजर्षि कहा है इसका अभिप्राय यह ज्ञात होता है कि वह गृहस्थ छोड़ चुके होंगे। और कम से कम ५० वर्ष की आयु भी होचुकी होगी यह गान्धार देश में आने का समय भी वही था जब कि पुनर्वसु अग्निवेश जतुकर्ण आदि शिष्यों

🙏 ३६ वर्ष युधिष्ठिर का राज्य, २४ वर्ष परीक्षित का और यज्ञ के समय जनमेजय की आयु ३० वर्ष की अवश्य होगी।

* गान्धार भूमौ राजर्षिर्नग्नजित स्वर्ग मार्गदः।
सगृह्य पादौप प्रच्छ चान्द्रभागं पुनर्वसुम् ॥ भेल संहिता ॥

को पढ़ाया करते थे। और जैसा कि कुछों का मत है कि दारुवाह और नग्नजित एक ही व्यक्ति हैं तो ये कश्यप के शिष्य थे ही। अतः हमारा यह विचार है कि अग्निवेश संहिता जिस को चरक संहिता भी कहते हैं और काश्यप संहित का निर्माण काल भारत युद्ध से लगभग ७०-७५ वर्ष पूर्व अर्थात् द्वापर युग का है। चरक संहिता के निर्माणकाल को हमारे भारतीय आज से १हजार वर्ष पूर्व अच्छी तरह से जानते थे। उन्हों ने ही ११ वीं शताब्दी में आने वाले अलबेरूनी को बताया था। अलबेरूनी ने लिखा है कि—"उनके (हिन्दुओं के) विश्वासानुसार चरक एक द्वापर युग में ऋषि था। उस समय उसका नाम अग्निवेश था।"

(अलबेरूनी का भारत भाग २ पृ० ७०)

नग्नजित् का विस्तृत वर्णन आगे परिशिष्ट में देंगे।

चरक विमर्श——जब कि चरक संहिता का निर्माण हुआ था वह अग्निवेश संहिता नाम से प्रसिद्ध थी। चरक द्वारा संस्कार होने के कारण इसका चरक संहिता नाम पड़गया है।

ऋषि आत्रेय पुनर्वसु के— अग्निवेश, भेड़, जतुकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि नाम के ६ शिष्य थे। इन्हों ने पुनर्वसु से पढ़ने के बाद अपनी अपनी पृथक् संहिताऐं भी बनाई थी। इन्हीं में एक अग्निवेश संहिता है जिस को चरक संहिता कहते हैं।

अग्निवेश अग्नि नामक ऋषि के पुत्र थे आयुर्वेद के अतिरिक्त धनुर्वेद, वेद, वेदांग के भी पूर्ण पंडित थे। इन्हों ने कृष्ण

यजुर्वेदीय अग्निवेश संहिता, अग्निवेश कल्प और अग्निवेश नाम का गृह्यसूत्र भी बनाया था। जिनका विवरण इस प्रकार है— "कृष्णयजुर्वेद वालों की दो और सौत्र शाखाएं हैं। वे हैं कौण्डिन्य और अग्निवेश। इनके नाम आनन्द संहिता में मिलते है। अग्नि वेश सूत्र से उद्धृत वचन कई ग्रन्थों में मिलते हैं। अग्निवेश कल्प का रचयिता भी वही आचार्य प्रतीत होता है जिसने कि आयुर्वेदीय चरक संहिता का निर्माण किया था। वह कृष्णयजुर्वेदीय आत्रेय का शिष्य था। अतः उस का कल्प भी याजुष ही होगा। (वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग १ पृ० २०)

"इन में से अग्निवेश का गृह्यसूत्र मिल गया है।" (भारत वर्ष का इतिहास पृ० २२०)

अग्निवेश ने ऋषि अगस्त्य तथा भरद्वाज से शिक्षा पाई थी। और इन्ही भरद्वाज से समस्त वेद तथा ज्योतिष, व्याकरण आदि वेदांगों का भी अध्ययन किया था। ये भरद्वाज अन्य कोई नहीं हमारे सुपरिचित द्रोणाचार्य के पिता थे। एक समय अर्जुन से द्रोणाचार्य ने कहा है——

अगस्त्यस्य धनुर्वेदे शिष्यो मम गुरुःपुरा।
अग्निवेश इतिख्यातस्तस्य शिष्योस्मि भारत॥ ९॥
तपसा यन्मया प्राप्तममोघम शनिप्रभम्।
अस्त्रं ब्रह्मशिरोनाम यद्दहेत् पृथिवीमपि॥ १०॥
ददता गुरुणा चोक्तं न मनुष्येष्विदं त्वया।

भारद्वाज विमोक्तव्य मल्पवीर्येष्वपिप्रभो ।

म० भा० आ० प० १४१ ।

ऋषि अगस्त्य से शस्त्रास्त्र विज्ञान अग्निवेश ने सीखा था। और अग्निवेश से मैंने सीखा है । मैंने बड़े परिश्रम से ब्रह्मशिर नामक अस्त्र अग्निवेश से प्राप्त किया है। इसके प्रयोग से पृथिवी भी जल जाती है और का तो कहना ही क्या। मुझे बताते समय मेरे गुरू अग्निवेश ने यह आदेश दिया था कि इसका प्रयोग दुर्वल मनुष्यों पर मत करना। आज इस को भी मैं तुम्हें वता रहा हूं।

द्रोणाचार्य ने भीष्म से कहा था कि———

महर्षेराग्निवेशस्य सकाशमहमच्युत ।
शस्त्रार्थ मगमं पूर्वं धनुर्वेद चिकीर्षया ॥ २६ ॥

ब्रह्मचारी विनीतात्मा जटिलो वहुला समाः ।
अवसं सुचिरं तत्र गुरु शुश्रूषणे रतः ॥ २७ ॥

पांचालो राजपुत्रश्च यज्ञसेनो महावलः ।
इष्वस्त्र हेतोर्न्यवसत्तस्मिन्नेव गुरौ प्रभुः ।
स मे तत्र सखा चासीदुपकारी प्रियश्च मे ॥

म० भा० आ० प० १३२ ।

हे भीष्म ! मैं अग्निवेश ऋषि के पास धनुर्वेद सीखने गया था।

वहीं पर पांचालराज द्रुपद भी धनुर्वेद सीखा करता था। वहीं मेरी और द्रुपद की मित्रता होगई थी। और इन्ही दोनों —— द्रोणाचार्य और द्रुपद ने द्रोणाचार्य के पिता ऋषि भरद्वाज से भी शिक्षा पाई थी।

स नित्यमाश्रमं गत्वा द्रोणेन सह पार्षतः।
चिक्रीडाध्ययनं चैव चकार क्षत्रियषभः॥ (आदिपर्व १६८।१०)

अग्निवेश के गुरू भरद्वाज—

अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदांगानिच सर्वशः। १४।
अग्निवेशं महाभागं भरद्वाजः प्रतापवान्।
अग्नेस्तु जातः स मुनिस्ततो भरत सत्तम।
भारद्वाजं तदाग्नेयं महास्त्रं प्रत्य पादयत्॥

म० भा० आ० प० १३१

अर्थात् अग्नि नामक ऋषि के पुत्र ने ऋषि भरद्वाज से वेद और वेदांग की शिक्षा पाई थी। और इन्हीं से आग्नेयास्त्र प्राप्त किया था। पांडव अर्जुन ने अंगारपर्ण गन्धर्व को इस आग्नेयास्त्र का इतिहास इस प्रकार बताया था।

पुरास्त्रमिदमाग्नेयं प्रादात् किल बृहस्पतिः।
भरद्वाजाय गन्धर्व गुरुर्मान्यः शतक्रतोः॥ २८॥
भरद्वाजादग्निवेश्यः अग्निवेश्याद् गुरुर्मम।
साध्विदं मह्य मदद द्रोणो ब्राह्मण सत्तमः॥ आ-प- १७२

इस आग्नेयास्त्र को देव गुरु बृहस्पति ने भरद्वाज को दिया, भरद्वाज ने अग्निवेश को, अग्निवेश ने मेरे गुरू द्रोणाचार्य को, और द्रोणाचार्य ने मुझे दिया है।

ऋषि भरद्वाज का आश्रम गंगाद्वार हरद्वार था। इनके पुत्र द्रोणाचार्य थे। द्रोणाचार्य घृताची नाम की अप्सरा से उत्पन्न हुये थे।

गंगाद्वारं प्रतिमहान् बभूव भगवानृषिः ।
भरद्वाज इतिख्यातः सततं संशितव्रतः ।
ददर्शाप्सरसं साक्षाद् घृताचीमागतामृषिः ।
रूप यौवन संपन्नां मद दृप्तां मदालसाम् ।
व्यप कृष्टाम्बरां दृष्ट्वा तामृषि चकमे ततः ॥ आदि प० १३१

चरक पर विचार—

प्राचीन काल में चरक संहिता नाम से एक कृष्ण यजुर्वेदीय संहिता भी थी। महाभारत काल से कुछ पूर्व यजुर्वेद शुक्ल और कृष्ण दो भागों में विभक्त होगया था। शुक्ल वाजसनेय और कृष्ण यजुष नाम से कहा जाता था। इन के अनुयायी क्रमशः वाजसनेयी और याजुष कहाते थे। शुक्ल की १५ और कृष्ण की ८६ शाखाएँ थीं †। याज्ञवल्क्य

† वैशंपायन शिष्योसौ यजुर्वेदं व्यकल्पयत् ।
षडशीतिस्तु येनोक्ताः संहिता यजुषां शुभाः । ब्रह्माण्डपु० २ ३४।८

१५ और वैशंपायन ८६ शाखाओं के ज्ञाता थे । याजुष या कृष्ण यजुर्वेद में एक चरक शाखा भी थी । चरक शाखा के अनुयायी भी चरक नाम से प्रसिद्ध थे । चरकों के भी ६ भेद थे । उन के नाम ये हैं——

आलम्बिकश्चरकः प्राचांपलंग कमलावुभौ ।
ऋचाभारुणि तांड्याश्च मध्यगी यास्त्रयोऽपरे ।
श्यामायन उदीच्येषुः उक्तः कठ कलापिनोः ॥

काशिका ४।३। ०४।

अर्थात्–आलंबिक, पलंग, और कमल पूर्व देश के चरक थे । ऋचाभ, आरुणी, और तांड्य मध्य देश के थे । श्यामायन, कठ और कलाप उत्तर देशीय चरक थे । पाणिनीय ने आगे एक सूत्र में और भी स्पष्ट कर दिया है ।

" कठ चरकाल्लुक्" । ४।३।१०७ । "कठेन प्रोक्तम धीयते कठाः । चरकेन प्रोक्तम धीयते चरकाः" । (इति काशिका)

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है —

श्यामायनि रुदीच्यांनां प्रधानः संवभूवह ।
मध्यदेश प्रतिष्ठाता चासुरिः प्रथमः स्मृतः ॥
आलंबिरादिः प्राच्यानां त्र्योदेश्यादयस्तुते ।
इत्येते चरकाः प्रोक्ताः संहिता वादिनो द्विजाः ॥

ब्रह्माण्ड पुराण २।३५ ।

उत्तर दिशा में श्यामायनि मध्य देश में आसुरी और पूर्व देश में आलंबि प्रधान थे। ये सभी चरक संहिता वादी थे। चरक संहिता के मन्त्रों को प्रसिद्ध यजुर्वेद भाष्यकार उव्वट ने भी उद्धृत किया है। "**चरकाणां मंत्र विकल्पाः। इन्द्रा वरुणाभ्यां त्वा। इन्द्रा बृहस्पतिभ्यां त्वा। इन्द्रा विष्णुभ्यां त्वा।**"

यजुर्वेद ७।२३।

इसी उव्वट ने दूसरे स्थान पर—

"**चरक श्रुतौ पूषणो ललाट इति पठ्यते**"। यजुर्वेद २५।२७।

चरक शाखा का उल्लेख श्रीयुत हेमराज शर्मा ने भी किया है—

तथा च चरकाः पठन्ति——श्वेतकेतुं हारुणेय ब्रह्मचर्यं किलासौ जग्राह। (याज्ञवल्क्य टीका बाल क्रीडा, उद्धृत उपोद्-घात काश्यप संहिता

वैशंपायन या चरक।

कृष्ण द्वैपायन के चार शिष्य थे उन में एक वैशंपायन भी थे। इन्हीं का दूसरा नाम चरक भी था। और इन के सवन्ध से इन के शिष्य भी चरक कहाते थे।

"**चरक इति वैशंपायनस्याख्या, तत्संवन्धेन सर्वेतदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते।**" (काशिका वृत्तिः ४।३।१०४)

उक्त कथन की पुष्टि पुराणों से भी होती है।

"**वैशंपायन शिष्यास्ते चरकाः समुदाहताः।**"

ब्रह्माण्ड पुराण २। ५।२६।

अस्तु शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन काण्व काठक और मैत्रायणी संहिता आज भी मिलती हैं । और कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरि संहिता मिलती है । चतुर्वेद भाष्यकार आचार्य सायण ने तैत्तिरि संहिता का ही भाष्य किया है ।

इन चरकों ने प्राचीन युग में बड़ी उन्नति की थी । इन के अनेक संघ थे । इन के संघों का पता ईसा की प्रथम शताब्दी तक मिलता है । प्रसिद्ध शक क्षत्रप नहपान के दामाद उषवदात ने शोपारग (सूर्पारक=सुपारा) और रामतीर्थ के चरक संघों को नारियल की जड़ें दान में दी थीं ।

"प्रकाकरेण पिंडितकानडे गोवर्द्धने सुवर्णमुखे । शोर्पारगे च रामतीर्थे च चरकर्षभ्यः ग्रामेनालं गोलेद्धात्री शते नालीगेर-मूल सहस्र प्रदेन" । (कल्याण गो अङ्क पृ० २०२ गोरखपुर)

उक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि प्राचीन युग में चरक नाम की कृष्ण-यजुर्वेद की एक शाखा थी । उस को संकलन करने वाले वैशंपायन ऋषि थे । उनका दूसरा नाम चरक था और उन के अनुयायी भी चरक कहाते थे । और वे बहुत लंबे काल तक फले और फूले ।

भारत युद्ध—

भारत युद्ध जिस के मुख्य पात्र कौरव और पांडव थे। जिस में १८ अक्षौहणी सेना १८ ही दिन में समाप्त होगई थी उस के काल के संबन्ध में एक नहीं सैकड़ों मत हैं । उन सभी पर

विचार किया जाय तो एक पृथक ही पुस्तक बनजायगी हम उस विवाद में पड़कर पाठकों का समय नष्ट करना नहीं चाहते। अतः संक्षिप्त रूप से इसका निर्णय करेंगे।

आचार्य वाराह मिहिर ने लिखा है कि— २५२६ में शक संवत् को मिलादेने से भारत-युद्ध-काल निकल आता है।

आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विक पंच द्वियुतः शककालस्तथा राज्ञश्च ॥

वाराही संहिता १३।३

आज के १८७२ शाके में २५२६ जोड़ने से ४३९८ वर्ष होते हैं। वास्तव में बात यह है कि वाराह मिहिर ने राजतरंगिणी का अनुसरण किया है। राजतरंगिणी में लिखा है कि ६५३ वर्ष कलियुग के बीत जाने पर भारत युद्ध हुआ था।

स्कन्द पुराण में लिखा है कि—

ततस्त्रिषु सहस्त्रेषु दशाधिक शतत्रये।
भविष्यं नन्द राज्यं च चाणक्योयान् हनिष्यति ॥ २५१ ॥

भारत युद्ध से तीन हजार तीन सौ दस वर्ष बीतने पर नन्द का राज्य होगा जिस को चाणक्य नष्ट करेगा। यदि हम चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्मकाल न मान कर राज्यारोहण काल ईसा से २७० वर्ष पूर्व मान लेते हैं तो ३३१० में २७० जोड़ने पर ३५८० होते हैं और इनमें २००७ और जोड़ने पर ५५८७ वर्ष होजाते हैं।

आगे लिखा है कि भारत युद्ध से ३ हजार २० वर्ष बाद विक्रमादित्य का राज्य हुआ। इस प्रकार ३ हजार २० में २००७ मिलादेने से ५ हजार २७ वर्ष होते हैं।

पञ्चम अध्याय समाप्त



छठा अध्याय प्रारंभ

कृष्ण-कालीन भारत—

कृष्ण-कालीन भारत जिसे द्वापर और कलियुग की सन्धि कहना अधिक उचित होगा सर्वाङ्ग पूर्ण उन्नति का युग रहा है। इसी में व्यास ‡ तथा श्री कृष्ण का जन्म हुआ है †। व्यास और कृष्ण क्रमशः ८ वें तथा ९ वें अवतार थे। व्यास जी ने वेदों को व्यवस्थित किया उन के शिष्य प्रशिष्यों ने शाखा प्रशाखा, ब्राह्मण, कल्प (नक्षत्र कल्प आदि) गृह्य सूत्र, श्रौतसूत्र आदि ग्रंथों की रचना की—

"ब्राह्मणं कल्प सूत्राणि भाष्य विद्यास्तथैव च।"

स्वयंवरों की अधिक प्रथा थी। कुन्ति द्रौपदी, रुक्मिणी, मित्र-विन्दा, सत्या आदि इस के प्रमाण हैं। तथा सन्तानोत्पत्ति के लिये नियोग भी उचित या वैध माना जाता था। उस

---

‡ अष्टमो द्वापरेरष्टा विंशेपराशरात्।
वेदव्यासस्ता तो जज्ञे जातुकर्ण्य पुरः सरः। ब्रह्माण्ड० ३।७३।६२

† द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पर्यवसानिके।
प्रादुर्भूतः कंस हेतोर्मथुरायां भविष्यति। म-भा-शा-प-३३९।८६
अष्टाविंशतिके तद्वद् द्वापरस्याथ संक्षये।
नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णि कुले प्रभुः॥ ब्रह्माण्ड० ३।७३।

युग में ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय भी वेदों के विद्वान थे। हिरण्य नाभ कौसल्य वेदों के शाखा-कार तथा वेदान्त के पंडित थे। इन के अनेक ब्राह्मण कुमार शिष्य थे। विपरीत इस के क्षत्रियों के अतिरिक्त ब्राह्मण भी शस्त्रास्त्रों के पूर्ण पंडित थे। ऋषि अगस्त्य, अग्निवेश, भरद्वाज, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और परशुराम इस के प्रमाण हैं। न केवल शस्त्रास्त्रों के पंडित थे अपितु द्रोणाचार्य कृपाचार्य अश्वत्थामा और परशुराम आदि रण पण्डित भी थे। इन्हों ने बड़े बड़े महारथियों के दांत खट्टे किये थे। तथा हजारों राज कुमारों को शस्त्रास्त्रों की शिक्षा प्रदान की थी। द्रोणाचार्य से मगध कलिंग सौराष्ट्र (द्वारका) आदि देशों तक से शिक्षार्थी धनुर्वेद सीखने हस्तिनापुर आया करते थे। सच तो यह है हस्तिनापुर धनुर्वेद का विश्वविद्यालय (यूनिवर्सिटी) था।

वक्तव्य— अस्त्र विद्या में ब्रह्मशिर, ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र आदि अनेक ऐसे अस्त्र थे जिन के प्रयोग से उर्वरा भूमि ऊषर हो जाती थी। ग्रामों में आग लग जाती थी। इनको परमाणुबम कहना अधिक उपयुक्त जंचता है ✣। इन के अतिरिक्त सम्मोहन अस्त्र (बेहोश करने वाले) तथा नालीक (बन्दूक) आदि का भी प्रयोग होता था। अर्जुन घटोत्कच आदि ने अनेक स्थानों पर

✣ शस्त्रास्त्र के संबन्ध में देखो लेखक का "भारत की प्राचीन जातियां" शीर्षक लेख "विश्ववाणी" प्रयाग नवम्बर १६४८ ई०।

नालीक का प्रयोग किया है।

साधारणतया धनुर्वेद से धनुष-बाण विद्या का बोध होता है किन्तु धनुर्वेद के अर्थ पर महेन्द्रकुमार शर्मा ने अच्छा प्रकाश डाला है वह इस प्रकार है—

"विश्वकोश के अनुसार धनुर्वेद की परिभाषा—धनूंषि-उपलक्षेण धनुरादीन्यस्त्राणि वेद्यन्ते अनेनेति" अर्थात् धनुष के उपलक्षण (व्याज) से धनुष तोप बन्दूक भाला तलवार और छुरी इत्यादि का प्रयोग तथा निर्माण विधि जिस से बोधित हो उसे धनुर्वेद शास्त्र कहते हैं। "अथ धनुः शब्दो चतुर्विधायुधे वर्ण्यते। तच्चतुर्विधम् मुक्तं, अमुक्तं, मुक्तामुक्तं, यंत्र मुक्तं च। मुक्तं चक्रादि अमुक्तं खड्गादि, मुक्तामुक्तं शक्त्यवान्तर भेदादि। यंत्र मुक्तं शरादि।" (गंगा मासिक पत्रिका भागलपुर मई १९३२ ई०) आयुर्वेद भी उस युग में उन्नति के शिखर पर था। ऋषि कश्यप, आत्रेय पुनर्वसु आदि ने हजारों शिष्य प्रशिष्यों को आयुर्वेद की शिक्षा दी थी। इन के शिष्य प्रशिष्यों ने अपनी अपनी स्वतंत्र संहिताओं की रचना भी की थी। ब्राह्मणों के अतिरिक्त राजर्षि दारुवाह, राजर्षि नग्नजित, राजर्षि वार्योविद, राजर्षि वामक राजर्षि निमि वैदेह तथा वैदेह कराल आदि क्षत्रिय भी आयुर्वेद के पूर्ण ज्ञाता थे।

यह इसी उन्नति का फल था कि मगधराज बृहद्रथ का पुत्र दो भागों में उत्पन्न हुआ माता पिता ने उस के जीवन की आशा

छोड़ कर फैंक दिया। किन्तु जरा नाम की स्त्री (राक्षसी ने उसको जोड़ कर राजा बृहद्रथ को सौंप दिया था यही कुमार जरासन्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ ‡। क्या यह कम चमत्कार था ?। राजा द्रुपद की कन्या शिखंडी थी। स्थूण नाम के यक्ष ने इस को कन्या से पुरुष बना दिया था ‡। भारत युद्ध में अर्जुन के घोड़े जख्मी होगये, कृष्ण ने उनको व्रणपूरक तथा वेदनाहर औषधियों से स्नान कराकर तत्काल ही पूर्ण स्वस्थ तथा युद्ध के योग्य बना लिया था।

उस युग में देवों का प्रभाव क्षीण होरहा था। आर्यों का बोल बाला था। यही कारण है कि देवराज इन्द्र ने आसाम के राजा नरक को मारने के लिये कृष्ण का आवाहन किया था। अर्जुन को दिव्यास्त्रों की शिक्षा देते समय इन्द्र ने हिरण्यपुर (हरनाई बिलोचिस्तान) वासी दानवों को परास्त करने के लिये अर्जुन से वरदान या वायदा ले लिया था। कृष्ण ने इन्द्र को गोवर्धन पूजा, पारिजात हरण के समय पराजित किया था। कृष्ण ने वरुण को परास्त किया था। अनिरुद्ध के विवाह के

---

‡ कर्तुं कामः सुख वहे शकले सा तु राक्षसी।
संयोजयामास तदा विधान बल चोदिता। म-भा-सभाप-१७।४१

‡ यक्ष स्थूण के नगर का नाम 'स्थूणश्रवा था जोकि आज सोनसूवा (जिला बरेली) नाम से प्रसिद्ध है।

अवसर पर कृष्ण ने देवों के प्रधान सेनापति कार्तिकेय सहित महादेव जी को परास्त किया था। कृष्ण और अर्जुन दोनों ने मिलकर खाण्डव-प्रस्थ दाह के युद्ध में मय देव सेना के इन्द्र को पराजित किया था। जनमेजय की नाग यज्ञ (नागों का वध) जो कि तक्ष शिला में हुई थी उस में शरणागत तक्षक की इन्द्र रक्षा नहीं कर सका था। इन्द्र को मथुराधीश कंस ने भी पराजित किया था।

इन्द्रेणं सह संग्रामं कृत्वा सायक विग्रहम्।
अमर्त्यैरजितो युद्धे मर्त्येनापि कथंहतः॥ (हरिवंश ३।२७)

कंस जरासन्ध का दामाद था। जरासन्ध बड़ा प्रतापी राजा था इस के पास ३ अक्षौहिणी सेना थी ✱। इस की संगठन शक्ति अद्वितीय थी। इसीकारण जरासन्ध ने २२ अक्षौहिणी सेना से कृष्ण पर आक्रमण किया था। समस्त भारत के राजा जरासन्ध के साथी थे। इन में भी रुक्मी, शिशुपाल आदि जो कि कृष्ण संबन्धी थे विशेष कर जरासन्ध के अनुयायी तथा पोषक थे। रण पण्डित, कूटनीतिज्ञ श्री कृष्ण ने अपने जीवन काल में ही मय जरासन्ध के सब को समाप्त करदिया था।

राजाओं में द्यूत (जुआ) मृगया (शिकार) और सुरा का

✱ अक्षौहिणीनां तिसृणामासीत समरदर्पितः। सभा पर्व १७।१३।

अधिक प्रचार था उक्त दोषों के कारण ही पांडवों को राज्य छोड़ कर वन वन भटकना पड़ा था। और यदुवंशी आपस में लड़कर ही समाप्त होगये थे।

गणतंत्र—

कृष्ण कालीन भारत में राज्यतंत्र और गणतंत्र दोनों ही राज्य चल रहे थे ॐ। कृष्ण कुकुर, भोज, अन्धक, वृष्णि आदि यादवों के जो गण राज्य थे उन के मुखिया थे।

"भेदाद्विनाशःसंघानां संघ मुख्योसि केशव।"

शान्ति पर्व ८१।२५।

आश्चर्य है कृष्ण गणराज्य के मुखिया थे और युधिष्ठिर के साम्राज्य वृद्धि में सहायक बने।

यह है कृष्ण कालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास।

छठा अध्याय समाप्त

ॐ गणतंत्र के गुण दोषों पर भीष्म पितामह और युधिष्ठिर का संवाद महाभारत शान्ति पर्व अध्याय १०७ में है।

परिशिष्ट

मेरु पर विचार—

समुद्र मंथन के समय देवों ने मेरु पर्वत पर विचार किया यह हम पहिले लिख चुके हैं । मेरु क्या था इस पर अब विचार करना है ।

मेरु पर विभिन्न विचार धारा हैं। कुछेक कहते हैं कि मेरु पर्वत पर ब्रह्माजी रहते हैं। कुछ कहते हैं कि मेरु सोने का पर्वत है। महाभारत मीमासा के लेखक चिन्तामणि विनायक वैद्य M.A.L.L.B. ने लिखा है कि यह उस युग की कल्पना मात्र है। कुछों का मत है कि मेरूका वर्तमान नाम पामीर है। पामीर पा-ए-मीर का अर्थ पर्वतों के चरण होते हैं। कुछ लोग पामीर को वामे दुनियां (संसार की छत्त) भी कहते हैं। प्राचीन काल में सीरिया में पामीर नाम की मन्डी भी थी। भग्नावशेष आज भी उस की याद दिला रहे हैं ।

किन्तु मेरा नम्र निवेदन है कि मेरू पर्वत तिब्बत के ही अन्तर्गत एक पर्वत था । और यहीं पर देवता लोग निवास किया करते थे । यही कारण है कि शास्त्रों में पदे पदे इस की प्रशंसा है। "मेरुः शिखरिणामहम्"। (श्रीमद्भगवद्गीता) "पर्वतानां मुखं मेरुः"। (महाभारत सभा पर्व ३८।२२)

देवलोक—

प्राचीन काल में देवों के देश को सुरलोक, देवलोक नाक, स्वर्गलोक, त्रिदशालय और त्रिविष्टप् आदि नामों से कहा जाता था। त्रिविष्टप का अपभ्रंश तिब्बत है।

स्वरव्ययं स्वर्ग नाक त्रिदिव त्रिदशालयाः।

सुरलोको द्यौ दिवौद्वे स्त्रियां क्लीवे त्रिविष्टपम्। (अमरकोश)

इसी अमरकोश ने मेरु को भी देवों का स्थान लिखा है—

मेरुः सुमेरुर्हेमाद्रि रत्नसानुः सुरालयः।

महाभारत में मेरु को देवों का घर बताया है और स्पष्ट कहा है कि नाक अर्थात स्वर्ग को मेरु ने घेर रक्खा है।

ज्वलन्त मचलं मेरु तेजोराशि मनुत्तमम्।

आक्षिपन्तं प्रभां भानोः स्वश्रृंगैः कांचनोज्वलैः॥ ५०॥

कनकाभरणं चित्रं देवगन्धर्व सेवितम्।

नाकमावृत्य तिष्ठन्तं उच्छ्रयेण महागिरिम्॥ आदि-प- १७।७

ब्रह्माण्ड पुराण में भी देवों का निवास मेरु पर ही बताया है—

महामेरौत्रयस्त्रिंशत् क्रीडन्ते यज्ञियासुराः। (ब्र०पु० २।१७।३४)

बौद्ध ग्रंथ अभिधर्म कोश ने भी देवों का स्थान मेरु लिखा है—

मेरु मूर्ध्नि त्रयस्त्रिंशः स चाशीति सहस्रदिक्।

विदिक्षु कूटाश्चत्वार उषिता वज्रपाणिभिः॥ (पृ० ७३)

चतुर्षु दिगन्त रालेषु च तत्र वज्रपाणयो देवा वसन्ति।

(टीकाकार राहुल सांकृत्यायन)

ऋषि धौम्य ने युधिष्ठिर से कहा है कि मेरु पर्वत पर ब्रह्मा विष्णु और सभी देवता रहते हैं।

यत्रात्मतृप्त्यै रध्यास्ते देवैः सह पितामहः। १६।

ब्रह्मणः सदनात्तस्य परंस्थानं प्रकाशते।

अत्यर्कानल दीप्तन्तं स्थानं विष्णो महात्मनः। १६।

प्राच्यां नारायण स्थानं मेरावति विराजते। म.भा.व.प० १६३

हिरण्याक्ष पुत्र अन्धक ने देवों को विजय करने के लिये मेरु पर ही आक्रमण किया था ॐ। समुद्र मंथन के बाद दैत्यराज बलि ने जो देवों पर भयानक आक्रमण किया था वह मेरु पर ही किया था। यह युद्ध इतना भयकर हुआ था कि रक्त की नदी (धारा) बहने लगी थी मेरु पर रक्त की कीचढ़ होगई थी ▯।

एक बार काशिपति दुर्जय ने देवों पर अभियान (चढ़ाई) किया था तब उस ने किंपुरुष, हरिवर्ष, कुरुभद्राश्व, इलावर्त (जो कि मेरु के मध्य में था) को जीतकर इन्द्र को परास्त करने

ॐ ततस्तु मेरु शिखरं जगामाद्भुत दर्शनम्। (वामन पु० ६।८)

▯ मेरु पृष्ठंतु रक्तेन रंजितं संप्रकाशते। (हरिवंश)

के लिये मेरु पर गया था * । और पराजित इन्द्र को मेरु या स्वर्ग का त्याग कर के भारत में आना पड़ा था † ।

एक वार नारद ने कंस से कहा था कि ———

गतोहं देव सदनं सौवर्णं मेरुपर्वतम् ।
सोऽहं कदाचिद्देवानां समाजो मेरुमूर्धनि ।
तत्र मंत्रयतामेवं देवतानां मयाश्रुतः ।
तत्र यो देवकी गर्भो विष्णुर्लोक नमस्कृतः ।
योऽस्यां गर्भाष्टमो कंसः स ते मृत्युर्भविष्यति ।

हरिवंश २।२८।५

अर्थात् मैं एक वार देवों के यहां सुवर्ण के पर्वत मेरु पर गया था वहां मेरु पर्वत पर देवों की सभा हुई थी, वहां देवों ने यह विचार प्रगट किया था कि देवकी का आठवां गर्भ कंस को मारेगा

राजा नरक को मारकर जब कृष्ण इन्द्र के यहां गये थे तब भी मेरु पर्वत पर ही गये थे ।

कामरूप (आसाम) के राजा का नाम नरक ‡ और इस के

---

* जगाम देव राजानं जेतुं सर्व सुरान्वितम् ।
मेरु पर्वत मारुह्य देव गन्धर्व दानवान् ॥

† विहाय पर्वतं मेरुं मर्त्यलोक मिहागतः । वाराह पुराण १०।४०

‡ इस के भगदत्त, महाशीर्ष, मदवान और सुमाली नाम के चार पुत्र थे । (हिन्दी शब्द सागर)

पिता का नाम शैलालय था विदर्भ की राजकुमारी माया से इस का विवाह हुआ था। देवों और मानवों ने मिलकर घृणा-वश इसको असुर की उपाधि देदी थी। यह नरक महापराक्रमी बलशाली था। इसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर(वर्तमान गोहाटी) थी। नरक देवराज इन्द्र को भी परेशान करता रहता था। एक बार इस ने देवों को परास्त कर के इन्द्र की माता अदिति के कुण्डल (कर्णफूल) भी छीन लेगया था। इन्द्र ने परेशान होकर द्वारका में जाकर श्रीकृष्ण से अपनी दुःख भरी कहानी सुनाई। इन्द्र ने श्री कृष्ण को यह भी बताया था कि——— नरकासुर ने मानवों तथा देवों को मार कर उनकी कन्याओं को अपहरण करके अपने घर में डाल लिया है ꣸! अतः उसे मार कर अपनी रक्षा की प्रार्थना की थी। इस पर श्री कृष्ण ने इन्द्र की प्रार्थना को स्वीकार कर के गरुड़ाकार विमान पर सवार हो कर प्राग्ज्योतिषपुर आये और नरक के सहायकों एवं मित्रों सहित मारदिया। इस के बाद सब सामान जिन में वन्दी युवतियां भी थीं उन को द्वारका भेज दिया। केवल मात्र वरुण का छत्र तथा अदिति के कुण्डल देने श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ गरुड़ाकार विमान पर ही स्वर्ग में गये थे।

꣸ देव सिद्ध सुरादीनां नृपाणां च जनार्दन।
हत्वा हि सोऽसुरः कन्यां रुरोध निज मन्दिरे॥ ब्रह्मपुराण ६३।६

उस का वर्णन इस प्रकार है——-

हिरण्यवर्षं वर्षन्तमारुरोह विहंगमम् । ४६

त्रिषयं समति क्रम्य देवयोश्चन्द्र सूर्ययोः ।

ययौ वात जवः पक्षी जनार्दन वशे स्थितः ॥ ४७ ॥

समेरु गिरिमासाद्य देव गन्धर्व सेवितम् ।

देव सद्मानि सर्वाणि ददर्श मधुसूदनः ॥ ४८ ॥

विश्वेषां मरुतं चैव साध्यानां च नराधिपः ।

भ्राजमानान्यति क्रामन् नश्विनोश्च परंतप ॥ ४६ ॥

प्राप्य पुण्य तमांल्लोकान् देवलोक मरिन्दम ।

शक्र सद्म सभा साद्य प्रविवेश जनार्दनः ॥ ५० ॥

अवतीर्य सताच्यांत्तु ददर्श त्रिवुधाधिपम् ।

प्रीतश्चैवाभ्यनन्दत्तं देवराजः शतक्रतुः ॥ ५१ ॥

प्रादाय कुंडले दिव्यं ववन्दे तं तदा च्युतः ।

स भार्यो त्रिवुधश्रेष्ठं नर श्रेष्ठो जनार्दनः ॥ ५२ ॥

अर्चितो देव राजेन रत्नैश्च प्रति पूजितः ।

सत्यभामा च पौलोम्या यथावदभिनन्दिता ॥ ५३ ॥

हरिवंश २।६४

आसाम से जब श्रीकृष्ण देवलोक को चले तो सर्व प्रथम उन

के मार्ग में हिरण्यवर्ष देश पड़ा था तब स्वर्ग में पहुंचे थे। स्वर्ग में श्री कृष्ण को सब से प्रथम सूर्य और चन्द्रमा ꣸ के स्थान मिले थे। इस के बाद मेरु पर्वत पहुंचे जहां कि गन्धर्व और देवता रहते हैं। वहां पर अनेक देवों के घरों को देखा था जिन में विश्वेदेव † मरुत ❀ साध्य और अश्विनी कुमार आदि प्रमुख हैं। इस के बाद देवराज इन्द्र के महल में प्रवेश किया था।

एक बार पार्वती के कहने से महादेव जी अपनी सुसराल (हिमालय) को छोड़ कर देवों और सिद्धों से सेवित मेरु पर चले गये थे *।

अष्टावक्र ने देवों की स्त्रियों को मेरु पर ही देखा था ‡। कवि कालिदास को भी इस का पूरा ज्ञान था कि देवों का निवास

꣸ आकाश में भ्रमण करने वाले सूर्य चन्द्र नाम के ग्रह इन देव जाति के सूर्य चन्द्र से भिन्न थे।

† विश्वे देवों की संख्या दस है।

❀ मरुतों की संख्या ४९ है।

* श्रुत्वा स देव्या वचनं सुरेशस्तस्याः प्रियार्थं श्वसुरं विहाय।
जगाम मेरुं सुर सिद्ध सेवितं भार्या सहायः स्वगणैश्चयुक्तः॥
ब्रह्मपुराण ३७।४०

‡ जितेष्वसुर संघेषु मेरु पृष्ठे महोत्सवः।
बभूव तत्र गच्छन्त्यो ददृशुस्तं सुरस्त्रियः।

मेरु पर्वत पर है इसी लिये कल्प वृक्ष को मेरु पर्वत पर लिखा है "मेरौ कल्पतरोरिव"। (रघुवंश १७।२६)

हरिवंश ने एक और पते की बात बताई है उसका कहना है कि तिब्बत के अतिरिक्त और भी कुछ स्थान हैं जहां देवता निवास करते हैं।

हिमवन्तं च मेरुं च नीलं निषध मेव च।
कैलासं मुंजवन्तं च तथ द्रिं गन्धमादनम्।
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दर मेव च।
एते देव गणानां च सिद्धानां च महात्मनाम्।
आश्रमाः पुण्य शीलानां सर्व कामयुताद्रयः।
एतेषामितरो देशो जम्बूद्वीप इति स्मृतः। (हरिवंश ३।११)

अर्थात् हिमवान् मेरु नील निषध * त्रिशिखर गन्धमादन (बदरिकाश्रम) कैलास मुंजवान ‡ और मन्दर पर्वत इन में देवों का स्थान था।

युधिष्ठिर आदि पांडव जब राज्य त्याग के बाद स्वर्ग में

---

* निषध पर्वत इलावर्त के दक्षिण हरिवर्ष की सीमा पर है।

(हिन्दी शब्द सागर काशी)

‡ मुंजवान हिमालय का एक पर्वत है। इसका वेदों में भी उल्लेख है।

गये हैं तो मेरु से पूर्व मार्ग में हिमालय पर्वत पड़ा था।

(महाभारत प्रास्थानिक पर्व अ० २)

त्रिविष्टप्—

त्रिविष्टप का अपभ्रंश तिव्वत है। किन्तु उक्त शब्द इस बात की सूचना देता है कि इस देश के अन्तर्गत भी तीन लोक अथवा देश थे। त्रि-तीन विष्टप-लोक या देश अर्थात् जहां तीन लोक हों उस को त्रिविष्टप् कहते हैं।

त्रि शब्द का अर्थ तीन होता है। विष्टप् का—भुवन, लोक, जगत आदि होते हैं। "जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्" । (इत्यमरः) "लोकस्तु भुवनेजने" । (इति मेदिनी) मालूम होता है इसी आधार पर स्वर्ग के राजा को त्रिलोक या तीनों लोकों का स्वामी कहा जाता था। और यह कथन महाभारत के इस पाठ से भी ठीक जचता है।

प्रहलादेन हृतं राज्यं महेन्द्रस्य महात्मनः ।
शीलमाश्रित्य दैत्येन त्रैलोक्यं च वशीकृतम् ॥

महाभारत शांति पर्व २३३।२०

अर्थात् दैत्यराज प्रहलाद ने इन्द्र को परास्त कर के देवलोक का शासन संभाला और अपनी योग्यता से तीनों लोकों को वश में कर लिया। ये तीनों लोक अन्य भारत या पाताल नहीं वल्कि त्रिविष्टप के ही अन्तर्गत थे। और यदि त्रिविष्टप् में तीनों लोक न मानकर भू लोक पाताल लोक और स्वर्ग को तीन लोक

मानते हैं तो इस में मेरा निवेदन है कि मर्त्यलोक और पाताल लोक के निवासी दैत्य दानव तथा मानव कभी भी इन्द्र के शासन में नहीं रहे इतिहास इसका साक्षी है ।

मेरु पर्वत की भौगोलिक स्थिति—

आग्नेय पुराण में लिखा है कि

भारतं प्रथमंवर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् ।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥

अर्थात् मेरु से दक्षिण दिशा में सब से पहिला भारतवर्ष दूसरा किंपुरुषवर्ष और तीसरा हरिवर्ष देश है इस के बाद में मेरु है इसकी पुष्टि व्यासपुत्र शुकदेव की यात्रा से भी होती है ।

व्यास का आश्रम मेरु पर्वत पर था यहीं पर घृताची नाम की अप्सरा से शुकदेव का जन्म हुआ था । शुकदेव के सुशिक्षित होने पर व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को अध्यात्मवाद की शिक्षा प्राप्त करने के लिये राजा जनक के पास भेजा था । तब मेरु से प्रस्थान करने के बाद मार्ग में हरिवर्ष, हिमवान देश पड़े थे । तब भारत में आया था । भारत में आते ही साथ चीन देश और हूणदेश पड़े थे तब आर्यावर्त में आकर जनकपुरी में गया था ॐ । आचार्य वराहमिहर ने भी वाराही संहिता में

ॐ मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः ।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत् ॥
स देशान्विविधान् पश्यन् चीन हूण निषेवितान ।
आर्यावर्त मिमंदेश माजगाम महामुनिः ॥
महाभारत शांतिपर्व ३२५।११।१५ ।

मेरु को उत्तर दिशा में ही लिखा है। इस वर्णन से यह तो सिद्ध है ही कि भारत से मेरु उत्तर में था साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि शुकदेव जी मेरु से चलकर हरिवर्ष होते हुये हिमवान देश को पार कर के आसाम होकर जनकपुर आये थे। क्योंकि किरात और चीन जाति के लोग आसाम में ही रहते थे। और इसी लिये प्राचीन युग में आसाम को चीन और चीन को महाचीन कहते थे।

राजसूय यज्ञ के समय पांडव अर्जुन का जब प्राग्ज्योतिषपुर में भगदत्त से युद्ध हुआ था तब भी किरात और चीनों से ही मुकाबला हुआ था ‡ यह भी स्मरण रहे यह भगदत्त इन्द्र और पांडु दोनों हीं का मित्र था † । विष्णुपुराण के अनुसार मेरु का वर्णन इस प्रकार है— मेरु से दक्षिण दिशा में सब से पहिला भारतवर्ष है, दूसरा किंपुरुषवर्ष है, तीसरा हरि वर्ष है। और मेरु से उत्तर दिशा में -पहिला रम्यक, दूसरा उत्तर कुरू और तीसरा हिरण्यमय वर्ष है। इन के बीच में इलावर्त देश है और इलावर्त के मध्य में मेरु पर्वत है। अभिधर्म कोश (बौद्ध ग्रंथ) में भी उत्तर कुरु को उत्तर में ही लिखा है। "उत्तर कुरूद्वीपः"।

---

‡ स किरातैश्च चीनैश्च वृतः प्राग्ज्योतिषोऽभवत्। सभापर्व २६।६

† अहं सखा महेन्द्रस्य शक्रादनवरो रणे।

भगवान् पितृसखा चैव प्रीयमाणो मयापि च। सभापर्व २६

मेरोरुत्तर भागे अवस्थितः" । [पृ० ७०] विष्णु पुराण में हिमवान हेमकूट और निषध पर्वतों को मेरु से दक्षिण में, और नील पर्वत श्वेत पर्वत और शृंगी को उत्तर में लिखा है । तथा मेरु से चैत्ररथ वन पूर्व में, वैभ्राज पश्चिम में गन्धमादन (वदरिकाश्रम) दक्षिण में और नन्दन वन उत्तर दिशा में है । अरुणोद सितोद भद्र और मानस नाम के चार सरोवर भी यहीं हैं । मानसरोवर प्रसिद्ध है । मानसरोवर को बौद्ध साहित्य में अनवतप्त नाम से लिखा है ।

अर्जुन की विजय—उक्त देशों में से हिमवान श्वेत पर्वत किंपुरुष-वर्ष गुह्य के रक्षित हाटक देश मानसरोवर हरिवर्ष और उत्तर कुरू को पांडव अर्जुन ने पराजित किया था । और राजसूय यज्ञ के लिये भेटें भी ली थीं । (सभा पर्व २८) और इस के लगभग ४५ वर्ष वाद अर्जुन के पौत्र परीक्षित ने भी किंपुरुष वर्ष हरिवर्ष उत्तर कुरू केतुमाल और भद्राश्व आदि अनेक देशों को पराजित कर के कर (Tax) भी वसूल किया था ❋ । उत्तर कुरू और उत्तर मद्र की राज व्यवस्था या शासन प्रणाली का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण ने भी किया है—

उदीच्यांदिशिये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तर मद्रा

(अ० ३८ खं० ३)

❋ भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान् कुरून् ।

किंपुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे वलिम् ॥ भागवत १।१६।१२

अलबेरूनी —— अलबेरूनी मुसलिम यात्री जो कि महमूद गजनी के साथ भारत में आया था उस ने मेरु के संबन्ध में लिखा है कि—"हिमवन्त के पहाड़ों में से जो सदा बर्फ से ढके रहते हैं और जहां से उनकी नदियां निकलती हैं। उन के पीछे मेरु पर्वत है"

अलबेरूनी का भारत भाग २ पृ० २६०

मेरू की सीमा—

प्राचीन काल में मेरू की सीमा कहांतक थी यह आज बताना सर्वथा असभव है। किन्तु फिर भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि इसका विस्तार दूरतक था। मध्य एशिया का प्रसिद्ध नगर जो कि वर्तमान समय में रूसी तुर्किस्तान में है समरकन्द भी सुमेरु या मेरु का ही भाग है। समर कन्द सुमेरु खंड का अपभ्रंश है। देश के नेता श्रीयुत जवाहरलाल जी ने समरकन्द का पुराना नाम मारा कन्डा लिखा है। (विश्व इतिहास की झलक भाग १ पृ० २६) माराकन्डा मेरुखन्ड का अपभ्रंश है मेरु और सुमेरु पर्याय वाची हैं। इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं। देहली से ४-५ मील की दूरी पर जो खंड खड के रूप में एक पर्वत-माला दूरतक चली गई है वह विन्ध्य पर्वत का भाग या टुकड़ा है। समरकन्द की प्राचीनता का उल्लेख चीनी यात्री सुयेनच्यांग ने भी किया है। १२वीं शताब्दी में भी समरकन्द समृद्धशाली नगर था यह खीवा या ख्वारजम की राजधानी था। दस लाख इस की जन संख्या थी। किन्तु मंगोल चंगेज खां ने नाराज होकर इस

को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था पूरी तरह से जन संहार किया था १० लाख जन संख्या में से केवल ५० हजार ही मनुष्य बच पाये थे। किन्तु चंगेज खां नाम से मुसलमान समझना भूल है। खान मंगोल भाषा का शब्द है । यह सम्मानित व्यक्तियों के साथ में प्रयुक्त होता था। वास्तविक नाम इस का तिमोचिन था । इसके पिता का नाम येगुसी बगातुर और पुत्र का नाम ओगताई था। शमावाद, (आकाश पूजा) ताओ ‡ और कन्फ्यूशन † चीन देश के धर्म थे। चंगेज खां आकाश पूजक था। आकाश को उपनिषदों में ब्रह्म कहा है "खब्रह्म" अतः धर्म से चंगेज खां हिन्दू था। खान

‡ ताओ या ताव धर्म का प्रथम आचार्य लाओ था। इस का सिद्धान्त वेदान्त के अद्वैत मत के समान था । यह कन्फूसस का समकालीन और उस से कुछ ज्येष्ठ था।(सुंगयुन पृ० १८)

† कन्फ्यूशन धर्म को मनु संहिता की भांति समाज संगठन की एक विशेष फिलासफी (या विचारावली) समझना चाहिये । इन के उपदेशों से सदाचार संबन्धी, राजनीति संबन्धी और साधारण सभ्यता संबन्धी ऊंची शिक्षा मिलती है ।

पृथिवी प्रदक्षिणा पृ० ३६५ (ले० शिवप्रसाद गुप्त, काशी)

कन्फूसस का जन्म ५५ वर्ष ईसा के पूर्व हुआ था और ७६ वर्ष की अवस्था में ४७५ वर्ष ईसा के पूर्व इस का देहान्त हुआ। यह आचार धर्म का प्रवर्तक था । (सुंगयुन पृ० १८)

शब्द के संबन्ध में शिवप्रसाद गुप्त जी का कथन है कि— "खां" नाम के पीछे लगाने से उन्हें मुसलमान न समझना चाहिये । वास्तव में "खां" मुसलमानी उपाधि नहीं है, यह मंगोल उपाधि है और मुगल शब्द भी इसी मंगोल का अपभ्रंश है ।"

(पृथिवी प्रदक्षिणा पृ० ३६०)

चंगेज खां आकाश पूजक था । हमारे उपरोक्त कथन की पुष्टि श्रीयुत जवाहर लाल जी के कथन से भी होती है । उन्हों ने लिखा है ——"चंगेज खां नाम से यह खयाल हो कि वह मुसलमान था, लेकिन वह मुसलमान नहीं था । यह एक मंगोल नाम है । चंगेज मजहब के मामले में बड़ा सहिष्णु आदमी था । उसका अपना मजहब शमावाद (Shamaism) था । जिस में अनन्त नीले आकाश की पूजा की जाती थी । वह चीन के ताव धर्म के सन्तों से अक्सर खूब ज्ञान चर्चा करता था । जब कि कठिनाई में होता था तब आकाश से सलाह मशविरा किया करता था ।"

(विश्व इतिहास की झलक पृ० ३१३)

अस्तु सुरलोक या तिब्बत ही देवों का देश था । इस में संदेह नहीं चाहे इस की सीमा कुछ भी रही हो । यद्यपि कुछ स्थान आज भी इस का संकेत करते हैं कि यहां पर देवों का निवास या देवों से संवन्ध अवश्य था । जैसे—हिमालय के अन्तर्गत लाहुल इसका लू-युल नाम का अर्थ देवों का देश है । थियान शान पर्वत चीनी भाषा में, थियान शान का अर्थ देवों का पर्वत होता है ।

(थियान = देवों-शान = पर्वत) तिब्बत में आठ वसु बारह आदित्य ग्यारह रुद्र एक इन्द्र और एक प्रजापति इस प्रकार ३३ कोटि या श्रेणी के देवता रहते थे। प्राचीन कालीन राजधानी का नाम अमरावती था। "नगरीत्वमरावती"। (इत्यमरः) जिसका अर्थ अमर—देवताओं की पुरी है। आज की राजधानी का नाम ल्हासा है। इस का भी तिब्बती भाषा का अर्थ देव भूमि ही है। (ल्हा = देव सा = भूमि) पश्चिमी तिब्बत की सीमा पर कराकोरम और लद्दाख & की सीमा पर एक रुदौक नाम का प्रसिद्ध स्थान है। यह व्यापार की बहुत बड़ी मन्डी है। रुदौक रुद्रौक का अपभ्रंश है। रुद्रौक का अर्थ रुद्रों का घर होता है। यहीं पर ११ रुद्रों का निवास था। कैलास पर कुबेर तथा महादेव रहते थे। कैलाश से सटा हुआ दक्षिण भाग से भूटान की सीमा है इस स्थान का नाम तरछेन या दरछेन है। यह भूटान ही प्राचीन भूतस्थान है। यहीं पर भूत जाति के मनुष्य रहते थे या रहते हैं। इन पर शासन महादेव जी का रहा करता था। महादेव जी बैल की सवारी रखते थे। यह प्रथा उस भू भाग में आज भी है। "एक तिब्बती ग्राम दाव्वा से बैल की सवारी मिलती है"

(बद्रीनाथ केदारनाथ यात्रा)

& लद्दाख की राजधानी ५०० वर्ष पूर्व शेह नामक स्थान पर थी जोकि लद्दाख से ६ मील दूर है। और अब इसकी राजधानी लेह है।

कलाश पर्वत की परिक्रमा ३२ मील है। कैलास से दक्षिण मानसरोवर है इसकी परिधि ४५ मील और गहराई ३० फिट है। मानसरोवर से दो मील पश्चिम राक्षस या रावण ताल है। इस की परिधि लगभग ७५ मील है। मानसरोवर के पास ही मांधाता पर्वत है। यहीं पर सूर्य वशी मांधाता ने तप किया था। किन्तु काल की गति बड़ी विचित्र है ! तिब्बत कभी समृद्धशाली तथा सभ्य देश था। आज दोनों का अभाव है। हां निःसन्देह तिब्बत में सुवर्ण रत्न कस्तूरी आदि बहुमूल्य पदार्थ आज भी मिलते हैं। इसीलिये मेरू के नाम हेमाद्रि तथा रत्न सानु लिखे हैं।

"मेरुः सुमेरुर्हेमाद्रि रत्नसानुः सुरालयः"। (इत्यमरः)

तिब्बत में प्राकृतिक सौन्दर्य आज भी है। भारतीय अनेक प्रथायें आज भी तिब्बत में हैं, जो कि भारत और तिब्बत की घनिष्टता की याद दिला रही हैं। किन्तु दुख होता है आज जिस तिब्बत की लम्बाई चौड़ाई क्रमशः १४०० और ८०० मील है उस देश की जन संख्या केवल ३० और और ४० लाख के ही बीच में हैं।

गरुड़ का परिचय——

राम रावण युद्ध में एक बार गरुड़ जाति के व्यक्ति ने श्री राम लक्ष्मण को प्राणों के संकट से मुक्त किया था। अतः गरुड़ जाति पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है।

गरुड़ जाति भी देव, दैत्य, दानव, और मानवों की तरह ही ऋषि कश्यप की सन्तान थी। कश्यप का दूसरा नाम अरिष्ट-नेमि भी है।

"अरिष्टनेमिरित्येके कश्यपेत्यपरे विदुः"।

महाभारत शांति पर्व २०८।८

गरुड़ की माता का नाम विनता था। इसी कारण गरुड़ का दूसरा नाम वैनतेय भी है। जैसे दिति से दैत्य दनु से दानव अदिति से आदितेय ये सभी मातृ द्योतक नाम हैं। ये सभी ऋषि कश्यप के पुत्र थे। गरुड़ के भाई का नाम अरुण था। संपाति और जटायु अरुण के पुत्र थे। ये संसार में गरुड़ नाम से नहीं बल्कि गृध्र नाम से प्रसिद्ध हुए।

जटायु का स्थान——

दक्षिण भारत में पंचवटी नाम का प्रसिद्ध स्थान है इस के आस पास का बहुत विस्तृत भू-भाग प्राचीन युग में दण्डक वन, दण्डकारण्य, महाकान्तार और जनस्थान नाम से कहा जाता था। इसका विस्तार विंध्यपर्वत से गोदावरी नदी के किनारे तक फैला हुआ था। यहीं पर रावण के मौसेरे भाई खर, दूषण

और त्रिशिरा नाम के राक्षस १४ हजर सैनिकों के साथ रावण की आज्ञा से शूर्पणखा की रक्षार्थ रहा करते थे। इसी स्थान में लक्ष्मण ने शूर्पणखा की नाक काटी थी। और यहीं पर लंकापति रावण द्वारा सीता का हरण हुआ था। इसी पंचवटी के समीप कहीं जटायु रहा करता था। और यहीं पर उसका छोटा सा राज्य था। जटायु जाति का ब्राह्मण ‡ तथा दशरथ का मित्र भी था ❀।

मित्र का पुत्र होने के कारण ही जटायु ने पंचवटी में श्री रामचन्द्र को आश्रय तथा हर प्रकार की सहायता का आश्वासन दिया था और अन्त तक निभाकर सीता की रक्षार्थ रावण द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ था। यह जटायु असाधारण बलवान एवं अपनी बात का पक्का था। इस ने युद्ध में रावण के दांत खट्टे करदिये थे। उधर रावण भी साधारण नहीं था। बलशाली धनुर्धारी कूट योधा तथा बड़ा पराक्रमी था। इसने

---

‡ रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मान मेव च।
आच चक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूत समुद्भवम्॥
वाल्मीकि अरण्य काण्ड १४।५।

❀ सखं पितृ सखं मत्वा पूजयामास राघवः। अरण्य कां० १४।३

सखा दशरथस्यासीज्जटायुररुणात्मजः।
महाभारत वन पर्व २७८।१।

दैत्य, दानव, मानव, देव और नाग आदि सभी को पराजित किया था। नाग वंशी तक्षक को जीत कर उस की स्त्री का हरण किया था ‡। तक्षक ही क्या इसने देव दानव आदि सभी की कन्याओं का हरण किया था ※। ऐसे रावण से जटायु का मुकाविला था। किन्तु जटायु वृद्ध और रावण युवा था। जटायु ने स्वयं अपना परिचय इस प्रकार दिया है।

षष्टि वर्ष सहस्राणि जातस्य मम रावण।

पितृपैता महं राज्यं यथा वदनुतिष्ठतः।

वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी॥

वाल्मीकि अरण्य काण्ड ५०

जटायु कहता है कि ६० हजार वर्ष (१६६ वर्ष ८ मास) की मेरी आयु है। मै अपने बाप दादा के राज्य को भोगते हुये वृद्ध होगया हूं। तू युवा है तेरे पास युद्ध के साधन धनुष, बाण, कवच और रथ भी हैं। किन्तु फिर भी मेरे जीते जी तू सीता को नहीं लेजा सकता है। अस्तु वाद विवाद के वाद भयंकर युद्ध हुआ। रावण को जटायु के मारने के लिये वड़े वड़े तीक्ष्ण वाणों नाराच विकर्णी तथा नालीक (वंदूक) का प्रयोग करना पड़ा था। वक्तव्य—— जटायु ने अपनी आयु ६० हजार वर्ष की वताई

‡ तक्षकस्य प्रियां भार्यां पराजित्यजहार यः। अरण्य कां० ३२।१४

※ जह्रे पथि नरेन्द्रर्षि देव दानव कन्यकाः। उत्तर कां० २४।१।

है। जिस के "अहोरात्रैवै संवत्सर:" के अनुसार १६६ वर्ष ८ मास होते हैं। दशरथ ने भी विश्वामित्र से अपनी आयु ६० हजार वर्ष की ही बताई थी।

षष्टिवर्ष सहस्राणि जातस्य मम कौशिक। (बालकांड २०।१०)

यह समय श्रीराम के विवाह का था विवाह के १२ वर्ष बाद १४वर्ष का वन वास हुआ तभी दशरथ की मृत्यु हुई इस प्रकार १७८ वर्ष की आयु में दशरथ का स्वर्गवास हुआ था। और श्रीराम के विवाह को लगभग इस समय तक २५ वर्ष व्यतीत भी हो चुके थे। अतः जटायु दशरथ से २५ वर्ष छोटे थे।

रावण ने नालीक का प्रयोग किया है नालीक बन्दूक को कहते हैं। शुक्र नीति में इस के दो भेद बताये हैं।

नालीकं द्विविधंज्ञेयं बृहत् क्षुद्र विभेदतः।
तिर्यगूर्ध्वं छिद्रमूलं नालंपंच वितस्तिकम्॥

धनुर्वेद संहिता में नालीक बन्दूक की गोलियों को और नलयंत्र बन्दूक का नाम लिखा है।

"नालीका लघवो बाणा नलयंत्रेण चोदिताः।"

बन्दूक की बारूद का नाम बाल्मीकि ने युद्ध काण्ड ४७।१४ में अग्निचूर्ण लिखा है। और धनुर्वेद संहिता में रंजक नाम लिखा है।

"रंजकं बहुलं तत्र स्थाप्यं च बहुधीमताम्"। (पृ० २७)

हम अभी लिख चुके हैं कि जटायु राजा दशरथ का मित्र था। यह मित्रता कब हुई इस प्रश्न के संबन्ध में हमारा अनुमान है कि इन्द्र की सहायतार्थ शम्बर से युद्ध करने जब राजा दशरथ गये थे तब ही मित्रता होगई होगी। वाल्मीकि ने लिखा है कि—

पुरा देवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः ।
आगच्छत्त्वा मुपादाय देवराजस्य साह्यकृत् ॥ ११ ॥
दिशामांस्थाय कैकेयि दक्षिणां दण्डकान् प्रति ।
वैजयन्त मितिख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः ॥ १२ ॥
स शम्बर इतिख्यातो शतमायो महासुरः ।
ददौ शक्रस्य संग्रामं देव संघै रनिर्जितः ॥ १३ ॥
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया । (अयोध्याकां०९)

अर्थात् दक्षिण भारत में दण्डक वन के अन्तर्गत वैजयन्तपुर नाम का नगर था। वहां का राजा शम्बर जिसका दूसरा नाम तिमिध्वज था। इसने देवराज इन्द्र को युद्ध के लिये ललकारा इन्द्र देव सेना को लेकर युद्ध करने आया शम्बर ने इन्द्र को परास्त किया। तब इन्द्र नें अपने मित्र दशरथ * तथा अन्य

---

* अजस्य राज्ञस्तनयाय धीमते नराधिपायेन्द्र सखाय मे स्पृहा ।
गते वनं यस्तनये दिवंगतो नमोघ बाष्पः कृपणं जिजीवह ॥

बुद्ध चरित ८।७९।

कुछ राजर्षियों को साथ लेकर पुनः युद्ध करने गये थे। इस युद्ध में दशरथ भी क्षत-विक्षत हुये थे। तब साथ में गई हुई कैकेयि ने दशरथ के प्राणों की रक्षा की थी। तब प्रसन्न होकर राजा दशरथ ने कैकेयि को दो वरदान दिये थे।

राजर्षि——वाल्मीकि ने राजर्षियों के नाम नहीं लिखे। किन्तु हमारा अनुमान है कि उन में एक हमारे सुपरिचित राजर्षि दिवोदास भी थे। दशरथ ने यदि मित्र के संवन्ध से सहायता की थी तो इन्हों ने शिष्य के नाते की थी।

शम्बर——मय दानव की मायावती और मन्दोदरी नाम की दो कन्याएं थीं। मायावती का शम्बर से और मन्दोदरी का विवाह लंकापति रावण से हुआ था। अतः शम्बर और रावण परस्पर रिश्तेदार थे।

सुमति——सूर्य वंशी राजा सगर की केशिनी और सुमति नाम की दो स्त्रियां थीं। जिन में सुमति गरुड़ की भगिनी थी। ॐ

मातलि——मातलि देवराज इन्द्र का सारथी था। इसकी पुत्री का नाम गुणकेशी था। इस के लिये वर ढूंढने के लिये देव ऋषि

ॐ अरिष्टनेमिदुहिता सुपर्ण भगिनी तुसा।
द्वितीया सगरस्यासीत् पत्नी सुमति संज्ञिता॥ वालकां० ३८।४।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणा प्रमिताभुवि। (ब्रह्माण्ड पुराण)

नारद और मातलि गरुड़ लोक में गये थे ⚘ ।

"अयं लोकः सुपर्णानां पक्षिणां पन्नगाशिनाम्" ।

महाभारत उद्योग पर्व १०१

सुमुख, सुनेत्र, सुबल आदि इन के नाम थे । किन्तु वहां पर गरुड़ों में मातलि को कोई वर पसन्द नहीं आया तव नाग जाति के सुमुख नामक युवक से गुणकेशी का विवाह किया था। यह सुमुख ऐरावत कुलोत्पन्न आर्यक का पौत्र था। स्मरण रहे इसी ऐरावत कुल की उलूपी थी जो कि हरद्वार में रहती थी जिस का गन्धर्व विवाह पांडव अर्जुन के साथ हुआ था । इस का पुत्र इरावान पांडव पक्ष में भारत युद्ध में लड़ा था और इसी युद्ध में मारा भी गया।

वलिवासव युद्ध——एक वार वलि ने देवों पर आक्रमण किया इस युद्ध के प्रधान सेनापति प्रह्लाद थे । इस युद्ध में पाताल-वासी नाग वरुण के सेनापतित्व में देवों के पक्ष में और इनके पड़ौसी गरुड़ दानव विप्रचित्ति के सेनापतित्व में दैत्यों के पक्ष में युद्ध करने आये थे। तव गरुड़ों ने नागों का वेतरह कदन (कतल) किया था।

समरे घातयामास गरुड़ैः पन्नगाशनैः ।

⚘ गरुड़ लोक पाताल के अन्तर्गत था । और पाताल दक्षिण प्रान्त का वहुत वड़ा प्रदेश था ।

समरे भिन्न गात्रास्ते पन्नगा शर पीडिताः ॥

(हरिवंश ३।६१।३३)

यह युद्ध बड़ा भयंकर था इस में देवों की भारी जन हानि हुई थी

तस्य वाण निपातैश्च हतावै शतशःसुराः ।

सायुधानच्छिनत् क्रुद्ध शतशोऽथ सहस्रशः ॥

इस युद्ध में अकेले असिलोमा दानव ने ३१ हजार देवों को मारा था।

"एकत्रिंशत्सहस्राणि योधानां दानवोत्तमः" ।

इस युद्ध में रक्त की नदी बहने लगी थी और मेरु पर्वत पर रक्त जम गया था, वह जमा हुआ रक्त ऐसा मालूम होता था मानों बसन्त ऋतु में पलाश (ढाक) के फूल खिल रहे हैं।

प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघा तरंगिणी ।

हाहाकारो महाशब्दो योधानामभवत्तदा ॥

वर्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे ।

रुधिरौघा महावेगा महानद्यः प्रसुस्रुवुः ॥ (हरिवंश)

इस युद्ध में दानवों ने देवों को इतना भयभीत कर दिया था कि उन के शिर के बाल बिखर रहे हैं, श्वास फूल रहा है, भयभीत होकर भाग रहे हैं, फिर भी पीछे फिर फिर कर देख लिया करते थे।

उद्विग्ना मुक्त केशास्ते भग्नदर्पाः पराजिताः ।

श्वसन्तो दुद्रुवुः सर्वे भयाद्वै वृषपर्वणः ॥ (हरिवंश)

युधिष्ठिर यज्ञ —— गरुड़ जाति के लोग युधिष्ठिर की यज्ञ में उपानयन (भेंट) लेकर भी आये थे।

"अम्बष्ठाः कौकुरास्तार्च्याः सह क्षुद्रक मालवैः"।

सभा पर्व ५२।१५

गरुड़ लोग द्रौपदी के स्वयंवर में भी उपस्थित थे।

"दैत्याः सुपर्णाश्च महोरगाश्च"। (म०भा०आ०प०)

वक्तव्य —— नाग जाति को कीट विशेष, गरुड़ को पक्षी, वानर और ऋक्ष को शाखा मृग मान लेना भारी भूल है। इसी विचार धारा से इतिहास विकृत होगया है। यदुवंश की एक शाखा कुकुर या कुक्कुर भी थी, क्या यह कुत्ते थे। कुकुर गरुड़ों के साथ युधिष्ठिर की यज्ञ में भी उपस्थित थे।

"अम्बष्ठाः कौकुरास्तार्च्याः वस्त्रपाः पल्लवैः सह"।

गण राज्य के प्रसग में आचार्य कौटिल्य ने भी कुकुरों का उल्लेख किया है।

वृजिक मल्लक मद्रक कुक्कुर कुरु पांचालादयो राज शब्दोप जीविनः। (अ०आदि से १३५।२)

कुकुर तथा वाराह नाम के ऋषि भी यधिष्ठिर की यज्ञ में आये थे

'कुक्कुरो वेणुजंघोथ कालापः कठ एव च'।
पैंगो वराहः। (सभा पर्व ४)

वाराह ऋषि का बनाया हुआ श्रौत सूत्र और गृह्यसूत्र आज भी

मिलता है † ।

प्राचीन काल में (२ हजार वर्ष पूर्व) काक नाम की भी जाति थी। इनका प्रजातन्त्र राज्य था, राजधानी का नाम काकपुर था। काकों के संबन्ध में श्री काशीप्रसाद जायसवाल का कथन इस प्रकार है—"सहसानीक और काक लोग भिलसा के आसपास रहते थे। भिलसा से प्रायः बीस मील की दूरी पर आज कल जो काकपुर नाम का स्थान है वहां प्राचीन काल में काकलोग रहते थे।" (अन्धकार युगीन भारत पृ०-३२२) काक जाति का अस्तित्व आज भी है पं० रामचन्द्र काक कुछ दिन पूर्व काश्मीर राज्य के प्रधान मन्त्री थे।

प्राचीन काल में मूषक नाम की भी जाति थी, मूषक का अर्थ मूसा या चूहा होता है। मूषक नाम का एक प्रदेश था। मूसों का प्रजा तंत्र राज्य था राजधानी मूषिका और शासक इनका कनक था।

"त्रैराज्यं मूषिक जनपदान् कनकाह्वयो भोक्ष्यति ।"

विष्णुपुराण ४।२४।६६

---

† वाराह श्रौतसूत्र श्री युत मेहरचन्द लक्ष्मणदास संस्कृत पुस्तक विक्रेता द्वारा मुद्रित होगया है।

और वाराह गृह्यसूत्र पंजाव यूनिवर्सिटी की ओर से मुद्रित हो चुका है। (वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग १ पृ० १९४)

मूषिक देश मूसी नदी के समीप था। और मूसी नदी हैदराबाद से होकर दक्षिण की तरफ बहती है।

मूसा राज्य का उल्लेख विदेशी विद्वानों ने भी किया है। जिनका उद्धरण विद्वद्वर श्री हेमराज शर्मा ने भी काश्यप संहिता के उपोद्घात पृ० १८६ में दिया है। वह इस प्रकार है—

सिन्धु समीपस्थ मूषक राज्य वर्णनेतत्तत् प्रदेशीया जनाः १३० वर्षपर्यन्तमपि जीवन्तिस्म। इति अलेक्जेन्डरस्य इतिहास लेखकः एरियन् (ARRIAN) नामको वदतीति स्मिथ महाशयो वर्णयति मूषक प्रदेशे त्रिंशदधिक शत वर्षायुष्यस्या साधारणतया दर्शनम्।

अर्थात् सिन्धु के पास मूषक देश के निवासी १३० वर्ष तक जीते हैं यह एरियन का कहना है। और स्मिथ महाशय का कहना है कि उनकी आयु १३० वर्ष से भी अधिक होती है।

नाग बहुत प्राचीन काल की जाति है। त्रेता से लेकर कलियुग में ईसा की चौथी शताब्दी तक इनका अस्तित्व रहा है। प्राचीन काल में इन का मूल स्थान पाताल देश (दक्षिण भारत का एक विशेष भू भाग) था। काश्मीर और तक्षक खण्ड [ताशकन्द] था। तक्षक-खण्ड में तक्षक जाति के नाग रहते थे। और महाभारत काल में ये समस्त भारत में फैलगये थे। हरद्वार में कौरव्य नाम का नाग था। उस की पुत्री उलीपी से पांडव अर्जुन का विवाह हुआ था। खांडव प्रस्थ तथा कुरुक्षेत्र में तक्षक और

वृन्दावन में यमुना तट पर कालीय नाग रहता था इस को श्री कृष्ण ने दमन किया था और पाताल को भेज दिया था ।

"नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि माचिरम् ।"

भागवत १०।१६।६०

इस के नाम पर कालीय ह्रद (कालीदह) आज भी मौजूद है। बौद्ध-काल में अनेक नागों को गौतमबुद्ध ने बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। लगभग २ हजार वर्ष पूर्व विदिशा, (भेलसा) मथुरा, पद्मावती ❀ आदि अनेक स्थानों पर नागों का शासन रहा है विशेष कर मध्य प्रान्त नागपुर इनकी राजधानी थी। और इन्दौरखेड़ा (बुलन्दशहर) में भी नागों की राजधानी थी। इस में श्री जायसवाल ने इस प्रकार लिखा है—वीरसेन नाग मथुरा तक वल्कि उससे भी और आगे इन्दौर खेड़ा तक पहुंच गया था। क्यों कि वहां से भी उस के बहुत से सिक्के जमीन में से खोद कर निकाले गये हैं। (अन्धकार युगीन भारत पृ० ६६) "बुलन्दशहर जिले के इन्द्रपुर इन्दौर खेड़ा) में या उस के आस पास भी एक और वंश राज्य करता था।" (अन्धकार युगीन भारत पृ० ७०) "शेषनाग ने इन्द्रपुर नामक नगर जीता था जो आज-कल बुलन्दशहर जिले में है।" (अन्धकार युगीन भारत पृ० २५) "मतिल नाग बुलन्दशहर जिले में शासन करता था।" (अन्धकार युगीन भारत पृ ३२०) किन्तु

❀ नव नागाः पद्मावत्यां प्रयाग मनु गगायाम् । (विष्णु पुराण)

समुद्र गुप्त काल में इन्दौर खेड़ा पर समुद्र गुप्त का अधिकार हो गया था। और उसने यहां का सर्वनाग नामक नाग को अपना गवर्नर बना दिया था। और स्कन्द गुप्त के शासन काल में भी यही सर्वनाग नाम का गवर्नर था। "स्कन्द गुप्त के शासनकाल में जो ताम्र लेख इन्दौर खेड़ा में मिले हैं वे गवर्नर सर्वनाग के खुदवाये हुए हैं।" (अन्धकार युगीन भारत पृ० ७८) और चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कुबेरनागा या महादेवी से विवाह भी किया था। प्रभावती इसी महादेवी की पुत्री थी। और इस के अतिरिक्त नाग जाति के नाम आज भी बंगाल विशेष कर महाराष्ट्र प्रान्त में दृष्टिगोचर होते हैं। 'त्र्यंबक नाथ काले' काले यहां पर कालीय का द्योतक है जो कि नाग जाति का भेद था। गोविन्द राव वामन वामन भी नाग जाति का भेद है। ज्योतिर्नाथ नाग (बंगाल) यहां पर नाग शब्द स्वयं अपने को स्पष्ट सूचित कर रहा है। आदि २।

इन के अतिरिक्त पुराणों में वृष (बैल) नाम की जाति का भी उल्लेख है।

वृषान् वैदिशकांश्चापि भविश्यांश्च निबोधत।

इन के नामों के साथ वजाय वृष के नन्दी शब्द का प्रयोग होता था। यशो नन्दी, भूत नन्दी, शिशु नन्दी, शिव नन्दी आदि इन के नाम थे। विदिशा (भेलसा) इन की राजधानी थी ये शुंगों के बाद हुये थे।

मैं पूछता हूं! क्या ये बैल थे?

नग्नजित् पर विचार——

नग्नजित् के मत का यत्र तत्र हमने उल्लेख किया है। और यह भी लिखा है कि नग्नजित् आत्रेय पुनर्वसु के शिष्य तथा समकालीन भी थे। अतः नग्नजित् पर भी संक्षिप्त प्रकाश डालना आवश्यक है ताकि वस्तु स्थिति का स्पष्टीकरण होजाय। महाभारत में लिखा है—

"नग्नजिन्नाम राजासीद् भुवि विख्यात विक्रमः।"

(आदि पर्व ६७।२१)

नग्नजित् नाम का राजा संसार प्रसिद्ध तथा पराक्रमी था।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

अथ हस्माह स्वर्जिन्नाग्नजितः। नग्नजिद्वा गान्धारः।

[शतपथ ८।१।४।१०]

नग्नजित् गान्धार का राजा था और इसका पुत्र स्वर्जित् था।

ऐतरेय ब्राह्मण भी उक्त कथन की पुष्टि करता है—

साञ्जयाय बभ्रवे देवावृधाय भीमाय वैदर्भ्याय।

नग्नजिते गान्धाराय। (३८।८)

बात यह है कि महाभारत काल में नग्नजित् वंश का बहुत बड़ा राज्य था। इस के आधीन अनेक गण राज्य थे। स्वर्जित् और सुबल नाम के दो इस के पुत्र थे। सुबल का पुत्र शकुनि था। शकुनि द्यूत कला का विशेषज्ञ था। इसी कला के बल पर पांडवों को जूआ में हराकर वन-वन भटका कर जीवन ही नष्ट करदिया

था। इसी का दुष्परिणाम एक दिन यह हुआ कि कौरव वंश तो नष्ट हुआ ही साथ में भारत भी गारत होगया।

प्रहलाद शिष्यो नग्नजित् सुबलश्चाऽभवत्ततः।
गान्धारराज पुत्रोऽभूच्छकुनिः सौबलस्तथा।
दुर्योधनस्य माता च जज्ञातेऽर्थविशारदौ॥

महाभारत आदिपर्व ६३।१०७

नग्नजित् प्रहलाद का शिष्य था। इस का सुबल नाम का पुत्र था सुबल का शकुनि पुत्र और गान्धारी कन्या हुई यही गान्धारी दुर्योधन की माता थी।

उपरोक्त पाठ में नग्नजित् को प्रहलाद का शिष्य कहा है। यह प्रहलाद दैत्य वंश का नहीं था बल्कि बाल्हीक † (बलख) देश का राजा था।

"प्रहलादो नाम बाल्हीकः स बभूव नराधिपः।"

महाभारत आदि पर्व ६७।३१

प्रहलाद का नग्नजित किस विषय का शिष्य था यह तो हम नहीं जानते किन्तु पुनर्वसु आत्रेय का आयुर्वेद का शिष्य अवश्य था।

गान्धार भूमौ राजर्षिर्नग्नजित् स्वर्गमार्गदः।
संगृह्य पादौ पप्रच्छ चान्द्रभागं पुनर्वसुम्॥

---

† बलख भारत के उत्तरपश्चिम की सीमा पर तथा अफगानिस्तान के उत्तर में है।

एव मुक्तस्तथा तस्मै महर्षिः पार्थिवर्षये ।
विषयोगेषु विज्ञानं प्रोवाच वदतांवरः ।। (भेडसंहिता)

उपरोक्त पाठ में राजर्षि और पार्थिवर्षि शब्द आये हैं इन से सहज ही ज्ञात होता है कि वह काल नग्नजित् का वानप्रस्थ का था। मत्स्य पुराण ने नग्नजित् के संवन्ध में एक और सूचना दी है। उसका कहना है कि नग्नजित् वास्तु विद्या (गृह निर्माण कला) का प्रवतक था।

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाचाद्यः पुरन्दरः ।
अष्टादशैते विख्याताः वास्तु शास्त्रोपदेशकाः ।
मत्स्य पुराण २५२।२

ऋषि भृगु अत्रि वशिष्ठ विश्वकर्मा दानव मय नारद नग्नजित् विशालाक्ष और देवराज इन्द्र वास्तु विद्या के प्रवर्तक थे। और जिस प्रकार नग्नजित् वास्तु विद्या का प्रवर्तक था, उसी प्रकार आयुर्वेद का भी प्रवर्तक था।

"जनकश्चैव राजर्षिस्तथैव हि विनग्नजित् ।"
(हेमाद्रि लक्षण प्रकाश, उपोद्घात काश्यप संहिता पृ० २३)

श्री कृष्ण ने एक वार गान्धार देश पर आक्रमण किया था तब नग्नजित के समस्त पुत्रों को पराजित किया था ‡। हम पहिले

‡ अयं गान्धारांस्तरसा प्रमथ्य जित्वा पुत्रान्नग्नजितः समग्रान ।
उद्योग पर्व ४७।७४

लिख चुके हैं कि नग्नजित् के आधीन अनेक गण राज्य भी थे। कुन्ती पुत्र कर्ण ने उन गण राज्यों को पराजित किया था ॐ। इन के अतिरिक्त कर्ण ने गान्धारों को तथा गिरिव्रज में जाकर नग्नजित के पुत्रों को भी जीता था *। मगध सम्राट जरासन्ध ने २२ अक्षौहणी सेना से जब मथुरा में श्री कृष्ण पर आक्रमण किया था तब जरासन्ध की सहायतार्थ नग्नजित् और सुबल दोनों पिता पुत्र आये थे ❀ ।

वक्तव्य ——उपरोक्त पाठों से नग्नजित् की गान्धार और गिरव्रज नाम की दो राजधानी मालूम होती हैं। अतः इस पर कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। श्री रामचन्द्र के समय में गिरिव्रज या राजगृह नाम के दो नगर थे। एक में मगध की राजधानी थी और दूसरे में केकय देश की। केकय देश में उस समय अश्वपति तथा इस के पुत्र युधाजित का राज्य था। विचित्र संयोग था कि दोनों गिरिव्रजों में राजा दशरथ की श्वसुरालय (सुसराल) थी। अस्तु उपरोक्त पाठ से ज्ञात होता है कि नग्नजित् की परिवार वृद्धि के साथ उन्हों ने अपनी राजधानी गान्धार और गिरिव्रज

ॐ नग्नजित् प्रमुखांश्चैव गणां जित्वा महारथान्। वनपर्व २५३।२१

* गिरिव्रज गताश्चापि नाग्नजित् प्रमुखाः नृपाः।
अंवष्ठाश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च जितास्त्वया। म०भा०द्रो०प०४।५

❀ गान्धार राजः सुबलो नग्नजिच्च महाबलः। हरिवंश २।३४

दो बनाली थीं । गान्धार में सुबल और गिरिव्रज या राजगिरि में स्वर्जित् का शा न रहा होगा। इस के साथ ही हमें यह भी जान लेना है कि तत्कालीन केकय नरेश धृष्टकेतु की राजधानी गिरिव्रज के स्थान पर अन्य कोई होगी। अलबेरूनी का भारत देखने से ज्ञात होता है कि आज से एक हजार वर्ष पूर्व राजगिरि का किला विद्यमान था। अलबेरूनी ने कन्नौज से काश्मीर के मार्ग में पड़ने वाले स्थान तथा उन की दूरी को बताया है । उस में राजगिरि से काश्मीर की दूरी २५ फ़र्सख़ * (१०० मील) की बताई है।

भ्रम निवारण —— हमारे आदरणीय श्रीयुत भगवतद्त्त B. A. जो कि इतिहास के विद्वान हैं। "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" तथा "भारत वर्ष का इतिहास" के लेखक हैं। उन्हों ने कौसल नरेश नग्नजित् की कन्या सत्या को गान्धार नग्नजित् की कन्या लिखा है जो कि सर्वांश में भ्रम पूर्ण है। "इसी नग्नजित्त की कन्या से देवकी पुत्र कृष्ण ने अपना एक विवाह किया था।" ।

(भारत वर्ष का इतिहास पृ० २८)

दूसरे स्थान पर लिखा है —"नग्नजित् की एक कन्या सत्या थी । वह कन्या अपने भाइयों में सब से छोटी होगी। संभवतः वह अपनी भतीजी गान्धारी से भी कुछ छोटी हो। यादव कृष्ण ने

* एक फ़र्सख़ चारमील का होता है ।

इसी नाग्नजिती सत्या से विवाह किया था ।" (भारत वर्ष का इतिहास पृ० १५३)

इस में मेरा नम्र किन्तु निश्चित मत है कि यह कथन सर्वथा निराधार है । वस्तुतः सत्या गांधार राज नग्नजित् की पुत्री नहीं थी अपितु कौसल नरेश नग्नजित् की थी ।

भागवत में लिखा है:—

नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीत् राजाति धार्मिकः ।
तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥ ३२॥
न तां शेकुर्नृपाः वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ।
तीक्ष्ण शृंगान् सुदुर्धर्षान् वीरगन्धासहाखलान् ॥

भागवत १०।५८

कौसल देश के राजा का नाम नग्नजित् था । उसकी सत्या नाम की कन्या थी । उसके विवाह के लिये स्वयंवर किया गया था । स्वयंवर में देश देशान्तर के राजा आये थे । किन्तु विवाह के लिये यह शर्त थी कि—बड़े दुर्दमनीय बलवान पने सींग वाले, गौके सात बिजार जो कि मनुष्य की गन्ध को भी सहन नहीं कर सकते उन को वश में करने वाले के साथ सत्या का विवाह होगा । इस शर्त को श्री कृष्ण ने पूरा कर के सत्या के साथ विवाह किया था । और विवाह के साथ यौतुक (दहेज) में श्री कृष्ण को एक सहस्र गौ ६ हजार हाथी ३ हजार युवति दासियां तथा रथ आदि भी मिले थे । विवाह के बाद श्री कृष्ण विदा होकर द्वारका को

जाने लगे तो मार्ग में प्रतिद्वन्दी राजाओं से युद्ध हुआ कृष्ण ने सब को परास्त किया तब सत्या को लेकर द्वारका गये थे। यह सब वर्णन भागवत दशम स्कन्ध में है।

इस की पुष्टि स्वयं सत्या के कथन से होती है। एक बार द्रौपदी द्वारका गई थीं। तब हरेक पटरानियों ने अपना अपना विवाह का वृत्तान्त अर्जुन की स्त्री द्रौपदी को सुनाया था। अपने विवाह वृत्तान्त में सत्या ने कहा है कि—

सप्तोक्षणोति बलवीर्य सुतीक्ष्ण शृंगान् ।
पित्रा कृतान् क्षितिपवीर्य परीक्षणाय ॥
तान् वीर दुर्मद हनस्तरसा निगृह्य ।
क्रीडन् बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ।
य इत्थं वीर्य शुल्कां मां दासीभिश्चतुरंगिणीम् ।
पथि निर्जित्य राजन्यान् निन्ये तद्दास्यमस्तुमे ॥

सत्या ने कहा है कि मेरे पिता ने राजाओं के बल परीक्षणार्थ पैने सींग वाले सात बैल छोड़े थे। श्री कृष्ण ने उन को बकरों के बच्चों (मेमनों) के समान बड़ी आसानी से पकड़ कर बांध कर डाल दिया था। और विवाह के बाद मार्ग में जो राजे युद्ध करने आये उन सब को भी परास्त किया था।

हरिवंश में कृष्ण की पटरानियों के नाम लिखे हैं। उन में नग्नजित् की पुत्री सत्या भी है। इस में टीका-कार ने स्पष्ट ही नग्नजित् को अयोध्या पति लिखा है।

कालिन्दीं मित्र विन्दां च सत्यां नाग्नजितीमपि ।
सुतां जाम्बवतश्चापि रोहिणीं काम रूपिणीम् ॥ ४१
मद्रराजसुतां चापि सुशीलां शुभलोचनम् ।
सात्राजितीं सत्यभामां लक्ष्मणां चारुहासिनीम् ॥ ४२
शैव्यस्य च सुतां तन्वीं रूपेणाप्सरसोपमाम् ॥ हरिवंश २।६०

टीका—कालिन्दीं सूर्यस्य पुत्रीं यमुनाम् । [१] मित्रविन्दां राजाधि देव्यां पितृष्वसरि आवन्त्याज्जाताम् [२] सत्यां अयोध्यापतेः नग्नजितः पुत्रीं नाग्नजितीम् [३] जाम्बवतः सुतां जाम्बवतीम् [४] रोहिणीं श्रुतकीर्तौ पितृष्वसरि कैकेयाज्जाताम् भद्रापरनाम्नीम् [५] मद्रराज सुतां लक्ष्मणाम् [६] सात्राजितीं सत्यभामाम् [७] शैव्यस्य सुतां तन्वीं नामतः गान्धार्याभिधामष्टमीम् एताःपट्टनायिकाः इस प्रकार इस ने सत्या को अयोध्या के राजा नग्नजित् की पुत्री और गान्धारी को जो कि देश वाचक नाम है उस को शैव्य की पुत्री लिखा है ।

'हिन्दी शब्द सागर' (काशी) जो कि हिन्दी कोशों में सब से बड़ा है उसने नग्नजित् नाम पर इस प्रकार लिखा है ।

[१] "गान्धार के एक बहुत पुराने राजा का नाम जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में है । [२] कोशल के एक राजा का नाम जिसकी सत्या नाम की कन्या का विवाह श्री कृष्ण के साथ हुआ था" । (हिन्दी शब्दसागर पृ० १७४७) । बस अब इस से अधिक लिखना है व्यर्थ है उक्त प्रमाणों से सिद्ध कि सत्या गान्धार

नग्नजित् की पुत्री नहीं बल्कि कौशल नरेश नग्नजित् की पुत्री थी।

श्री कृष्ण की स्त्री गान्धारी—

श्री कृष्ण की अनेक स्त्रियां थीं उन में एक गान्धार देश की राज मारी भी थी। गान्धार देश की होने के कारण उसका नाम गान्धारी था। इस के संवन्ध में निम्नलिखित पाठ उपलब्ध होते हैं।

गान्धारीमवहत् कृष्णो महिषीं यादवर्षभः।
एष चैव शतं हत्वा रथेन क्षत्रपुंगवान्।

उपरोक्त दोनों पाठों से केवल इतना ज्ञान होता है कि सैकड़ों क्षत्रियों को मार कर श्री कृष्ण ने गान्धारी से विवाह किया था। दुर्योधन की माता गान्धारी का कथन है—

तथा गान्धार राजस्य सुतां वीरः स्वयंवरे।
निर्जित्य पृथिवीपालानावहत् पुष्करेक्षणः।
रथे वैवाहिके युक्तः प्रतोदेन कृत व्रणाः। द्रोणपर्व ११।११

अर्थात् श्री कृष्ण गान्धार राज की पुत्री के स्वयंवर में गये वहां पर राजाओं से युद्ध छिड़गया उन राजाओं को चाबुक से मार मार कर क्षत विक्षत करके पराजित किया और गान्धारी से विवाह किया था। उपरोक्त पाठों से गान्धारी के पिता तथा गान्धारी के नाम का पता नहीं लगता। किन्तु हरिवंश ने इसके पिता का नाम शैब्य लिखा है—

"शैब्यस्य च सुतां तन्वीं रूपेणाप् सरसोपमाम् ।"
और तत्रान्तर में शैब्य की पुत्री का नाम सुकेशी लिखा है।

तस्मिन् गान्धार राजस्य दुहिता कुलशालिनी ।
सुकेशी नाम विख्याता केशवेन निवेशिता ॥

इतना लिखने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि श्री कृष्ण की स्त्री गान्धारी का नाम सुकेशी और उस के पिता का नाम शैब्य था ।

नीलमतपुराण — —

गान्धारी के स्वयंवर का वर्णन नीलमत पुराण में कुछ विस्तार से किया है वह इस प्रकार है — —परीक्षित पुत्र जनमेजय ने ऋषि वैशंपायन से पूछा है कि भारत युद्ध में काश्मीर के राजा कौरव या पांडव पक्ष में युद्ध करने क्यों नहीं आये थे। उनको निमत्रित ही नहीं किया गया अथवा किसी कारण वश नहीं आसके । इस के उत्तर में वैशंपायन ने कहा था कि काश्मीर का राजा गोनन्द* जरासन्ध का मित्र था। कंस के मरने पर जरासन्ध का सहायक बनकर श्री कृष्ण से युद्ध करने गया था। वह कृष्ण द्वारा युद्ध में मारा गया । इस का पुत्र दामोदर गान्धारी के स्वयवर में श्री

---

* हरिवंश में गोनन्द का नाम गोनर्द लिखा है ।

काश्मीर राजा गोनर्द करूषाधिपतिस्तथा । हरिवंश २।३४।

कृष्ण से बाप का बदला लेने गया। वहां अनेक देशों के राजाओं से श्री कृष्ण का युद्ध हुआ, इससे भी हुआ अन्त में यह भी कृष्ण के हाथों से मारा गया ‡। उस समय दामोदर की स्त्री गर्भवती थी। श्री कृष्ण ने उसी को गद्दी पर बिठलाया था। उस का पुत्र बालगोनन्द नाम का हुआ †। भारत युद्ध के समय वह बालक था इसलिये कौरव और पांडवों ने इसको नहीं बुलाया ❀। स्वयंवर के समय बालगोनन्द माता के गर्भ में था। और भारत युद्ध में वह बालक १०—१२ वर्ष की आयु का था। इस से सहज ही अनुमान होता है कि कृष्ण का गान्धारी से विवाह भारत युद्ध से १०—१२ वर्ष पूर्व ही हुआ होगा। द्रौपदी स्वयंवर में श्रीकृष्ण बलदेव कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न तथा प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध भी उपस्थित थे ▯। उस समय कृष्ण की आयु संभवतः ५५ वर्ष की होगी उस के ४० वर्ष बाद भारत युद्ध हुआ है तब कृष्ण की आयु ६५ वर्ष की और गान्धारी सुकेशी के विवाह के समय

---

‡ अथोपसिन्धु गान्धार विषयेऽभूत् स्वयंवरः।
ततः स वासुदेवेन युद्धे तस्मिन्निपातितः। नीलमत पु० २७।

† ततः सा सुषुवे पुत्रं बालगोनन्द संज्ञितम्।

❀ बालभावात् पांडुसुतैर्नानीतः कौरवैरपि। नीलमत।

▯ संकर्षणो वासुदेवो रौक्मिणेयश्च वीर्यवान्।
साम्बश्च चारुदेष्णश्च प्राद्युम्नि स गदस्तथा। म०भा०आ०प०१८५

८३—८५ की होगी। कृष्ण जी ने लगभग २५ वर्ष की आयु में मथुरा को छोड़ कर द्वारका में निवास स्थान बनाया था। और १०५ वर्ष तक द्वारका में निवास किया है ♉। उस के बाद १३० वर्ष की आयु में इस संसार को त्याग कर दिवंगत होगये थे। भारत युद्ध के बाद युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष तक राज्य किया है। कृष्ण के दिवंगत होने पर ही युधिष्ठिर ने राज्य का त्याग किया था। भारत युद्ध में कृष्ण की आयु ६५ वर्ष की थी ६५ और ३६ मिलकर ३१ होते हैं इस प्रकार भी कृष्ण की आयु १३० वर्ष की ही सिद्ध होती है।

वक्तव्य——जब श्री कृष्ण ने गान्धारी सुकेशी से विवाह किया था तब श्रीकृष्ण की आयु ८०—८५ वर्ष की थी। इस आयु में विवाह करना मनुष्य की काम शक्ति का बना रहना वर्तमान जगत में असंभव तथा विस्मय जनक प्रतीत हो सकता है। किन्तु यदि इस आयु में विवाह तथा काम शक्ति असंभव तथा विस्मय जनक है तो १६ वर्ष की आयु में भीष्म तथा १७५ वर्ष की आयु में वाल्हीक का भारत युद्ध में युद्ध करना भी अवश्य असंभव एवं आश्चर्य जनक होगा।

इस में मेरा नम्र निवेदन है कि आयु के परिमाण का समय समय पर परिवर्तन होता रहा है। आयु के अनुसार ही

♉ वसाम्यत्र वरारोहे शत पंच समास्तथा। वाराह पु० १४६।८।

शारीरिक एवं मानसिक शक्ति रहती है। वर्तमान समय में भी जिनकी आयु अधिक है उन की शक्ति भी बड़ी आयु में रहती ही है। भारत के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड विलिंगडन ने आज से १५ वर्ष पूर्व ७३ वर्ष की आयु में विवाह किया था। संसार प्रसिद्ध नाट्यकार बर्नार्डशा १०० वर्ष की आयु में भी स्वस्थ हैं। उन का मस्तिष्क पूरा काम करता है। कृष्ण कालीन भारत में आयु का औसत १०० वर्ष का था।

"वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन्काले।"

(च० शा० ६।३४)

आज घटते घटते केवल २३ वर्ष रहगया है। ऐसी स्थिति में जब कि उस युग को ५ हजार वर्ष बीत गये हैं वर्तमान काल के कार्यों से तुलना नहीं की जानी चाहिये। जब कि इस युग में घी दूध आदि पौष्टिक पदार्थों की तो चर्चा ही क्या पेट भर भोजन भी निश्चिन्तता के साथ मिलना दुर्लभ होगया है। जिसके कारण प्रतिदिन महामारी के रूप में हैजा चेचक न्युमोनियां प्लेग आदि रोगों का आक्रमण होता ही रहता है। परिणाम स्वरूप प्रति वर्ष भारत में लाखों व्यक्ति समय से पहिले ही अकाल मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। इस के अतिरिक्त हमारे रहन सहन तथा आचार विचार तथा चरित्रों में आकाश पाताल का अन्तर है। फिर उस युग की वर्तमान युग से तुलना कैसे संभव है। उस कृष्ण कालीन युग की अपेक्षा पूर्व का युग भी कहीं अच्छा

था इस संबन्ध में आत्रेय पुनर्वसु ने अग्निवेश से कहा है——

"प्रागपि चा धर्मादृते नाशुभोत्पत्तिरन्यतोऽभूत् । आदिकाले अदिति सुत समौजसोऽतिविमल विपुल प्रभावाः । प्रत्यक्ष देव देवर्षि धर्मयज्ञ विधि विधानाः । शैलेन्द्र सार संहत स्थिर शरीराः । प्रसन्न वर्णेन्द्रियाः पवन सम जव पराक्रमाश्चारु स्फिचोऽभिरूप प्रमाणा कृतिप्रसादोप चयवन्तः । सत्यार्जवानृशंस्य दान दम नियम तप उपवास ब्रह्मचर्य व्रतपरा । व्ययगत भय राग द्वेष मोह लोभ क्रोध शोक मानरोग निद्रा तन्द्रा श्रम क्लम आलस्य परिग्रहाश्च पुरुषा बभूवुरमितायुषः ।" (च० वि० ३।२६)

आत्रेय पुनर्वसु शिष्य मडली के साथ भ्रमण करते हुये पांचाल देश की राजधानी कांपिल्य नगर (कंपिलाग्राम जि० फरुक्खाबाद) में आगये थे। वहां उन को होने वाली महामारी के चिन्ह दीखे थे। तब ही उन्हों ने उन चिन्हों पर अग्निवेश को उपदेश दिया था। और आदिकाल के मनुष्यों के जीवन पर भी कुछ प्रकाश डाला था। वह इस प्रकार है। पुनर्वसु ने कहा है——

आदि काल में मनुष्य देवों के समान ओजस्वी बलवान तथा प्रभावशाली होते थे । आपस में एक दूसरे से प्रत्यक्ष मिलना रहता था। वे धर्मात्मा यज्ञों का अनुष्ठान करते रहते थे उनके शरीर पहाड़ों के समान स्थिर एवं दृढ़ होते थे। उन का वर्ण सुन्दर

वायु के समान वेग और पराक्रम होता था। वे सत्यवादी सीधे साधे निष्कपट तथा दानी होते थे। वे दम नियम तप उपवास और ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने वाले थे। और वे भय राग-द्वेष लोभ मोह क्रोध शोक थकावट आलस्य आदि दोषों से मुक्त थे इन्हीं कारणों से वे अमितायु होते थे, अर्थात् वे आयु की सीमा से मुक्त थे या यों कहिये वे वहु दीर्घ जीवी होते थे। जैसे जैसे समय वीतता गया वैसे वैसे ही उक्त वातों में कमी आती गई। यह वर्णन आदि काल का है इस में सन्देह के लिये स्थान नहीं। इस संबन्ध में अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। किन्तु मैं केवल एक ही उदाहरण उपस्थित करता हूँ वह भी त्रेता युग का।

त्रेता युग में जब कि रामचन्द्र वन को गये थे उस समय राजा दशरथ की आयु १७८ वर्ष ८ मास की थी। उस आयु में भी दशरथ की शारीरिक तथा काम शक्ति कम नहीं थी। वे उस आयु में भी कैकेयी से समागम (मैथुन) के लिये व्याकुल थे जिस की साक्षी ऋषि वाल्मीकि देरहे हैं।

न ददर्श स्त्रियं राजा कैकेयीं शयनोत्तमे ।
स काम वल संयुक्तो रत्यर्थी मनुजाधिपः ॥ १७ ॥
कामी कमल पत्राक्षीमुवाच वनितामिदम् ।
तं मन्मथ शरैर्विद्धं कामवेग वशानुगम् ॥ २७ ॥
उवाच पृथिवी प लं कैकेयी दारुणं वचः ।

कामो हस्तेन संगृह्य मूर्धजेषु भुविस्थिताम् ॥

वाल्मीकि अयोध्या कां० १०।११

गान्धार—

प्रसिद्ध चन्द्र वंशी राजा ययाति का एक पुत्र द्रुह्यु था। इस की चौथी पीढी पर गान्धार हुआ उसी ने इस देश में अपने नाम पर गान्धार (कन्धार) नाम की राजधानी बनाई। और इसी के नाम पर देश का नाम गान्धार हुआ है *। कालान्तर में इस देश पर गन्धर्वों का अधिकार होगया इस कारण इस का दूसरा नाम गन्धर्व देश भी होगया है †। इस देश में रहने वाले गन्धर्वों की संख्या ३ करोड़ थी ये कैकेय देश के पड़ौसी होने के कारण भरत के मामा युधाजित को परेशान करते रहते थे। युधाजित ने अपने पुरोहित तथा गुरू ऋषि गार्ग्य को श्री रामचन्द्र के पास भेज कर इस संवाद से सूचित किया और यह भी सुझाया कि गन्धर्वों को परास्त कर के कौसल राज्य में सम्मिलित करलें। युधाजित के परामर्श के अनुसार श्री रामचन्द्र ने भरत के द्वारा गन्धर्वों को पराजित किया और गान्धार को दो भागों में विभक्त कर के भरत के पुत्र तक्षक व पुष्कल के नाम से "तक्षशिला"

---

* अंगारस्य तु दायादो गान्धारो नाम भारत।
ख्यायते तस्य नाम्ना वै गान्धार विषयो महान्। हरिवंश १।३२।२६

† अयं गन्धर्व विषयः फल मूलोपशोभितः। वा० उत्तर का० १००।१०

और "पुष्कलावती" नाम की दो पुरी बनाई । उन में क्रमशः तक्षशिला में तक्षक को और पुष्कलावति में पुष्कल को राज्य भार सौंपा।

तक्षशिला रावलपिंडी से १८ मील उत्तर और पुष्कलावती पेशावर से १७ मील उत्तर पूर्व कुभा (काबुल) और सुवास्तु नदी (स्वात) के संगम पर थी। इस स्थान का वर्तमान नाम चारसिद्दा है यह पेशावर जिले की तहसील है । यह देश प्राचीन काल में आर्यों का गढ था। यहां की ऊन बड़ी उत्तम होती थी इसका उल्लेख ऋग्वेद में भी है।

सर्वाहमस्मि रोमशा गान्धारीणामिवाविका ।

ऋ० १।१२६।७।

उपनिषद् काल में भी गन्धार ज्ञान विज्ञान तथा अध्यात्म विद्या के लिये प्रसिद्ध था । यहां का राज मार्ग (सड़क) निरन्तर चलता रहता था। इस का उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद् में भी है जिस का अभिप्राय है कि कोई भी बुद्धिमान मनुष्य ग्राम से ग्राम में गान्धार का मार्ग पूछ पूछ कर गान्धार पहुंच जाता था *। गान्धार की राजधानी तक्ष शिला ने बहुत प्रसिद्धि पाई थी। यह बौद्ध संस्कृति का केन्द्र रहा है तक्षशिला का विश्वविद्यालय देश देशान्तर में प्रसिद्ध था। वस्तुतः उस युग में तक्ष शिला समस्त

---

* ग्रामाद् ग्रामं पृच्छन् पंडितो मेधावी गन्धारानेवोपपद्यते ।

छा० उ० ख० १४।

विद्याओं का केन्द्र था। इस में कृषि धनुर्वेद आयुर्वेद आदि सभी विषय पढ़ाये जाया करते थे। इस में भारत के अतिरिक्त ईरान ईराक आदि अन्य देशों के भी विद्यार्थी पढ़ने आया करते थे। बौद्ध कालीन मगध का जीवक तथा काशी के युवराज ब्रह्मदत्त ने भी यहीं पर आयुर्वेद का अध्ययन किया था। हमने अभी कहा था कि पुष्कलावती सुवास्तु के संगम पर थी। किंतु महाभारत काल में यह भू भाग गान्धार से पृथक् होगया था। उस समय सुवास्तु देश का राजा चित्र वर्मा था ॐ। यह दुर्योधन के पक्ष में लड़ा था। सुवास्तु का उल्लेख पाणिनीय ने भी किया है

"सुवास्त्वा दिभ्योऽण्" (अष्टाध्यायी ४।२।७७)

"सुवास्तोरदूरभव नगरं सौवास्तम्।" (काशिका)

सुवास्तु का अर्थ है सुन्दर नगर और सुन्दर घर, यह नाम बतलाता है कि प्राचीन काल में यह आर्यों का देश बड़ा सुन्दर रहा होगा। इसी के पास वर्णु नाम की नदी थी। नदी के नाम पर देश तथा नगर था। इसका अस्तित्व पाणिनीय के समय तक रहा। इसी लिये पाणिनीय ने उसका उल्लेख किया है।

"वर्णुनाम नदस्तत्समीपे देशो वर्णुः।"

(काशिका ४।२।१०३)

आज कल इस नगर का नाम बन्नू है। यह सीमा प्रान्त का एक

ॐ चित्रवर्मा सुवास्तुकः। म० भा० उद्योग प० ४।१३।

जिला है । यहीं पर स्कन्धावार (छावनी) भी है । यह प्रदेश जिस को वर्तमान समय में सीमा प्रान्त कबायली इलाका और अफगानिस्तान है इस में रसा सुमर्त्वा (सुवास्तु = स्वात) गोमती (गोमल) क्रमु (कुर्रम) कुभा (काबुल) तृष्टामा चित्राल) आदि नदियां हैं इनका ऋग्वेद १०।७५। में उल्लेख है । इस प्रदेश में १३०० वर्ष पूर्व तक भी आर्यों के राज्य थे । स्वात उद्यान कपिश तथा नगरहार आदि राज्यों के नाम थे । कालान्तर में यह प्रदेश बौद्ध धर्म तथा बौद्ध संस्कृति का केन्द्र बना जिन में बलख इनमें मुख्य था । इस के बाद मुसलिम धर्म प्रधान बनगया है । सुयेनच्वांग काल में न केवल उक्त प्रदेश अपितु कुस्तन (खुतन) और समरकन्द में भी आर्य संस्कृति थी । सुयेनच्वांग ने लिखा है कि—

"समरकन्द के लोग बौद्ध नहीं थे अग्नि की पूजा करते थे ।"

(सुयेन च्वांग हिन्दी पृ० ७४)

राजधानी ———राजनैतिक कारणों से राज्यों की सीमा तथा राजधानियां भी बदलती रहती हैं यह प्रकृति का नियम है । इसी नियम के अनुसार गांधार की भी अनेक राजधानी बनीं राज्य स्थापना से लेकर रामायण काल तक इस की राजधानी गान्धार जिस को कन्धार कहते हैं रही । श्री रामचन्द्र ने इस के दो भाग कर दिये पूर्वी और पश्चिमी, सिन्ध के इस पार की तक्षशिला पूर्वी और उस पार की पुष्कलावती पश्चिमी बनी । चीनी यात्री हुयेनसंग जो कि ६२९ ई० में भारत आया था उसने गांधार की

राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) लिखा है। और पेशावर से उत्तर-पूर्व १०० "ली" पर (३३ मील) सिंध नदी पार कर के पुष्कलावती नगरी लिखी है। और सुंगयुन जोकि ५१५ ई० में भारत आया था उस ने भी पेशावर को ही स्वीकार किया है। और ११ वीं शताब्दी में आने वाले अलवेरूनी ने गान्धार की राजधानी का नाम वैहिन्द लिखा है। जिसको आजकल उन्द या ओहिन्द कहते हैं। यह जेलम नदी से २० फर्सख (८० मील) और पेशावर से १४ फर्सख (५६ मील) है। "कन्धार की राजधानी वैहिन्द जो कि सिन्धु नदी के पश्चिम में है २० फर्सख पुरुशावर १४ फर्सख" (अलबेरूनी का भारत भाग २ पृ० १३२) राजतरंगिणी के लेखक कल्हण ने जिस को उद्भाण्ड लिखा है संभवतः वही वैहिन्द है। महाभारत काल में गान्धार की राजधानी किस नगर मे थी यह तो हम नहीं वता सकते किन्तु स्थान का ज्ञान अवश्य करा सकते हैं जिन के आधार ये हैं। विदुर ने शकुनि को पर्वतीय कहा है।

जानीमहे सेवितं सौबलस्य वेद द्यूते निकृतिं पार्वतीयः।

(सभा पर्व ६२)

भारत युद्ध के वाद अश्वमेध यज्ञ के समय अर्जुन काठियावाड़, गुजरात, द्वारका होता हुआ पश्चिम समुद्र के किनारे किनारे होकर पंजाव में आया और पंजाव के वाद गान्धार

देश में गया था ।

ततः स पश्चिमं देशं समुद्रस्य तदा हयः ।
क्रमेण व्यचरत् स्फीतस्ततः पंचनदं ययौ ॥ १८ ॥
तस्मादपि स कौरव्य गान्धार विषयं हयः ।

आश्वमेधिकपर्व ८३ ।

नीलमत पुराण ने गान्धार की राजधानी सिन्धुनदी के पास बताई है ।

"अथोपसिन्धु गान्धार विषयेऽभूत स्वयंवरः ।"

(नीलमत पुराण २४)

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर हम यह मान लेते हैं कि इस की राजधानी पंजाब से आगे अर्थात् सिन्धु नदी के पार और सिन्धु के ही समीप कहीं पहाड़ी स्थानों में होगी ।

यह है गान्धार का संक्षिप्त इतिहास । अधिक लिखने के लिये पुस्तक बढ़ जाने का भय है अतः पाठक हमें क्षमा करेंगे ।

समाप्त

शुभं भूयात्

Opinion of Dr. R. N. Mehta.

I am glad to have gone through the "Dhanvantari Parichaya" by Pt. Raguhvir Sharan Vaidya which dealing with the prehistoric events and bringing in the same time, to light many great Ayurvedic exponents of the hoary past, embodies a vivid exposition of the Lord Dhanvantri, the great savant and teacher of the School of Surgery of the Octo-partite Ayurveda. The erudite author has, very nicely, contrived to dispel controvercies, prevalant among the scholars, about the incarntion, position, period and place of the great ancient teacher of the teachers of Ayurveda, and thus beautifully proved a prehistoric fact by numerous quotations from Indian scriptures and other poetic works of the sages of yore.

There has been hitherto, in the Ayurvedic world, a great scarcity of historical works, and this one may well be called *a successful endeavour* towards this end. The treatise is not only an absolute necessity for the students of Ayurveda, but also will undoubtedly, prove equally serviceable in the domain of Archæology and Ancient Indian History and Cul-

ture as well. I hope, in future also the works, focusoing many other remote stars of the Ayurvedic literary firmament, clouded by the dim distant antiquity, will be issued from the mighty pen of the learned author

Dr. R. N. Mehta, M. A. D. I. M. S.
Sahityacharya, Ayurveda-Shasti,
Chief Editor of "Sudhakar"
and Professor-in-charge, Department
of Midwifery, Gynaecology
and Hygiene, Rishikul Ayurvedic College
3-12-50 Hardwar U. P.

डा० आर० एन० मेहता की उपरोक्त अंग्रेजी सम्मति का हिन्दी भाषानुवाद

मुझे पं० रघुवीरशरण द्वारा निर्मित "धन्वन्तरि परिचय" पुस्तक को पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। जिस में प्रागऐतिहासिक-काल की गौरव पूर्ण घटनाओं पर प्राचीन युगीन आयुर्वेद के महान प्रवर्तकों पर, तथा अष्टाङ्गआयुर्वेद के धुरन्धर पंडित शल्य शास्त्र के आचार्य भगवान धन्वन्तरि पर विशद रूप से सुन्दर प्रकाश डाला है। प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों के भी महान आचार्य भगवान् धन्वन्तरि के अवतार, काल, स्थान, और स्थिति आदि

के संवन्ध में जो विद्वानों में वाद विवाद चल रहा है उस को विद्वान लेखक ने बड़े सुन्दर ढंग से दूर करने का प्रयत्न किया है और इस प्रकार प्राचीन ऋषिकृत ग्रंथों (आर्ष ग्रंथों) तथा अन्य भारतीय शास्त्रों से अनेक प्रमाण देकर प्राग् ऐतिहासिक काल के तथ्यों को भी बड़े सुन्दर ढंग से सिद्ध किया है। आयुर्वेद संसार में अब तक ऐतिहासिक ग्रन्थों का बड़ा अभाव रहा है, अतः इस ओर यह एक सफल प्रयत्न कहा जा सकता है। यह ग्रन्थ न केवल आयुर्वेद के विद्यार्थियों को अत्यन्त आवश्यक है। अपितु प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति, तथा पुरातत्व विज्ञान के क्षेत्र में भी निःसन्देह उतना ही उपयोगी है। मुझे आशा है भविष्य में भी आयुर्वेदिक साहित्य आकाश मण्डल के अन्धकारमय दीर्घ-काल से मेघाच्छादित सुदूर के अन्य तारागणों पर भी विद्वान लेखक की शक्तिशालिनी लेखनी से प्रकाश डाला जायगा।

डा० आर० एन० मेहता, एम० ए०
डी०आई०एम०एस० साहित्याचार्य
आयुर्वेद शास्त्री, चीफ एडीटर "सुधाकर"
प्रोफेसर-इंचार्ज डिपार्टमेन्ट मिडवाइफरी,
गाइनीकोलौजी एन्ड हाइजीन,
ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरद्वार यू०पी०

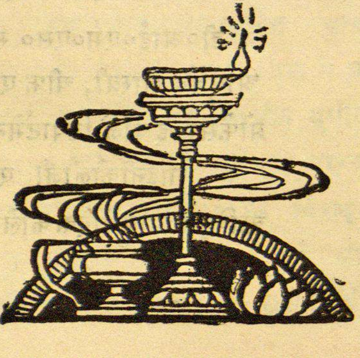
३-१२-५० ई०

"धन्वन्तरि परिचय" को प्रकाशित कर पं० रघुवीरशरण शर्मा जी ने अत्यन्त खोज का काम किया है ।

अब तक अनेक मत धन्वन्तरि के अवतार विषयक फैले हुये थे, उनको सप्रमाण एकत्रित कर उत्तम रीति से वैज्ञानिक प्रकाश डाला है प्रत्येक वैद्य को यह पुस्तक पढ़ना और मनन करना चाहिये ।

धन्वन्तरि त्रयोदशी के दिन इस का पठन पाठन होना मेरी दृष्टि में परमावश्यक है । आशा है वैद्य जी अपनी अनुसंधान विधि को जारी रख कर आयुर्वेद विषयक अनेक ग्रंथियां सुलझाते रहेंगे । मैं लेखक को इस परिश्रम के लिये बधाई देता हूं ।

वैद्य-रत्न कविराज प्रताप सिंह,
डी०एस०सी० (आयुर्वेद) पी०सी०एस०,
३-१२-५० डाइरेक्टर आफ़ आयुर्वेद
राजस्थान—उदयपुर



॥ धन्वन्तरि परिचय पर सम्मतियां ॥

प्रिय शर्मा जी,

आप के द्वारा प्रेषित 'धन्वन्तरि परिचय' की एक प्रति मिली देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वास्तव में इस तरफ किसी का ध्यान नहीं गया है। आपने पुराण व अन्य साहित्यों के आधार पर धन्वन्तरि के भेद व परिचय का बड़ा सुन्दर संग्रह व विचार प्रदर्शन किया है। इसलिये आप धन्यवाद के पात्र हैं। यह पुस्तक प्रत्येक वैद्य को अपने साथ रखना चाहिए।

भवदीय—

विश्वनाथ द्विवेदी, प्रिंस्पिल

२२-११-१९५०, ललितहरि आयुर्वेदिक कालेज, पीलीभीत

———— :o: ————

वैद्यराज श्री पं० रघुवीर शरण जी शर्मा द्वारा लिखित "धन्वन्तरि परिचय" को आद्योपान्त पढ़ कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इस विषय पर अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है और विशेष कर भारतीय वाङ्मय पर आधारित होने के कारण अत्यन्त ओजपूर्ण मौलिक तथा प्रामाणिक है। पुस्तक में आयुर्वेद प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि के विषय में विशद वर्णन किया गया है। तथा प्रसंगवश आयुर्वेद के अन्य आचार्यों

के वर्णन के साथ साथ काश्यप संहिता, चरक संहिता, आदि के निर्माण काल का भी सप्रमाण एवं सयुक्तिक विवेचन किया गया है। इस के अतिरिक्त प्राचीय भारतीय इतिहास की अनेक महत्वपूर्ण तथा ज्ञातव्य घटनाओं के सम्बन्ध में भी अनेक भ्रान्तियों का निराकरण करते हुये सुन्दरर प्रकाश डाला गया है। अतः यह रचना न केवल वैद्यों तथा आयुर्वेद प्रेमियों के लिये ही अपितु भारतीय इतिहास के जिज्ञासुओं के लिये भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रस्तुत पुस्तक वैद्य जी के गम्भीर अध्यन मनन एवं बहुश्रुतता का परिणाम है और ऐसी उत्तम रचनाओं के लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है विद्वत्-समाज वैद्यजी की इस कृति का समुचित समादर कर उनका उत्साह वर्धन करेगा।

मुकुन्दी लाल द्विवेदी शास्त्री
डी०आई०एम०एस०,
आयुर्वेदाचार्य,
प्रोफेसर—ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज,
हरिद्वार

१२–११—५०

धन्वन्तरि परिचय पर सम्मति

वैद्यराज श्री पं० रघुवीर शरण शर्मा जी द्वारा लिखित "धन्वन्तरि परिचय" नाम की पुस्तक को अवलोकन कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इस पुस्तक में शल्य तंत्र के प्रधान

आचार्य आयुर्वेद महोदधि के रत्न, प्रातः स्मरणीय भगवान् धन्वन्तरि का परिचय विस्तार पूर्वक लिखा गया है। प्रसङ्ग-वश समागत अन्य आयुर्वेदिक आचार्यों का परिचय भी वैद्य जी ने देकर इस ग्रन्थ को परमोपयोगी बनादिया है। आयुर्वेदीय इतिहास के प्रेमी वैद्यों और विद्यार्थियों के लिये यह ग्रन्थ महान् उपयोगी है। हम ऐसे विद्वता पूर्ण ग्रन्थ लिखने के लिये वैद्य जी को धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि वैद्य जी इस प्रकार आयुर्वैदिक साहित्य की वृद्धि करते रहेंगे।

भवदीय—

सोमदेव शर्मा सारस्वत, शास्त्री

साहित्यायुर्वेदाचार्य ए०एम०एस०

लेक्चरार फार्मेकालोजी डिपार्टमेण्ट

६—११—५० मेडीकल कालेज, लखनऊ यू०पी०

लेखक की भविष्य में प्रकाशित होनेवाली

❀ पुस्तकों के नाम ❀

१—देव जाति का परिचय

२—पाताल लोक

३—कृत्या और अभिचार

४—वेद और आयुर्वेद

५—हिन्दी ज्योतिष